परलोकवाद
और
भारतीय धर्मग्रन्थ

लेखक
मुहम्मद फ़ारूक़ ख़ाँ
संपादक
एस. कौसर लईक़

बिस्मिल्लाहिर्रहमानिर्रहीम

'अल्लाह के नाम से जो बड़ा दयावान, अत्यन्त कृपाशील है।'

भूमिका

मानव–लोक में यह प्रश्न सदैव उठता रहा है कि क्या जीवन की यात्रा का अंत मृत्यु पर हो जाता है, या वास्तविकता इसके बिलकुल विपरीत है? मानव–जीवन की यात्रा मृत्यु पर कदापि समाप्त नहीं होती, बल्कि मानव की नीति शाश्वत जीवन है। उसके लौकिक जीवन को देखकर यह भ्रम नहीं होना चाहिए कि मानव के लिए कोई शाश्वत जीवन नहीं है और वह पैदा हुआ है तो मिटने ही के लिए पैदा हुआ है। हालांकि यह विचार मानव–स्वभाव और उसकी मानसिकता के प्रतिकूल है। प्रत्येक मनुष्य एक ऐसे जीवन की अभिलाषा रखता है जिसे मृत्यु पर विजय प्राप्त हो। प्रत्येक व्यक्ति एक ऐसी बहार का स्वप्न देखता है जो सदाबहार हो, जिसकी शोभा और सौंदर्य सदा बना रहे, जहाँ न दुख हो, न किसी प्रकार की चिंता और न किसी वियोग और न किसी प्रकार के भय की आशंका पाई जाती हो।

इस्लाम की शिक्षाओं के अध्ययन से यह मालूम होता है कि मानव की अभिलाषाएँ और कामनाएँ निरर्थक नहीं हैं बल्कि ईश्वर की ओर से यह एक संकेत है कि मनुष्य किसी अमरलोक का प्राणी है। उसे सामान्यतः अपने वास्तविक स्वरूप का ज्ञान नहीं होता, जिसके कारण उसका सारा जीवन भ्रमित होकर रह जाता है। मानव के पथभ्रष्ट हो जाने का मौलिक कारण इसके अतिरिक्त और कुछ नहीं होता कि वह सांसारिक जीवन ही को सब कुछ समझ बैठता है और उसकी दृष्टि इतनी संकुचित हो जाती है कि उसे लौकिक हानि–लाभ के सिवा कुछ दिखाई नहीं देता।

यह देखकर बड़ी ख़ुशी होती है कि इस्लाम की इस धारणा का समर्थन हमारे भारतीय धर्मग्रन्थ पूर्णरूप से करते हैं। शाश्वत जीवन और मानव की अमरता की धारणा भारत के लिए कोई नई धारणा नहीं है।

प्रस्तुत पुस्तक ''परलोक और भारतीय धर्मग्रंथ'' में लेखक ने यही सिद्ध करने का प्रयास किया है कि परलोक की धारणा भारत के लिए कोई अपरिचित धारणा नहीं है। यह अलग बात है कि विभिन्न कारणों से यह धारणा धूमिल होकर रह गई है और व्यावहारिक जीवन से इसका कोई

सम्बन्ध न रहा। इस पुस्तक में परलोकवाद के महत्त्व पर विशेष प्रकार से प्रकाश डाला गया है और इसके साथ ही इस धारणा के विरुद्ध जो धारणाएँ पाई जाती हैं, उनका विश्लेषणात्मक अध्ययन भी प्रस्तुत किया गया है, विशेष रूप से इस पुस्तक में परलोक की धारणा के सम्बन्ध में प्राचीन भारत का क्या दृष्टिकोण रहा है, इस पर प्रकाश डाला गया है और इससे सम्बन्धित विषयों का भी जायज़ा लिया गया है। उदाहरणार्थ मृत्यु, पितृलोक, परलोक, स्वर्ग, नर्क आदि।

यह पुस्तक इससे पहले कई बार छप चुकी है और पाठकों से इसे आशातीत प्रशंसा प्राप्त हुई है। इस पुस्तक के महत्त्व को देखते हुए यह आवश्यक समझा गया कि इसे अधिक-से-अधिक प्रामाणिक और अधिक प्रभावकारी बनाया जाए। इसके लिए श्री एस० कौसर लईक़ साहब से निवेदन किया गया कि वे इस पुस्तक को नवीन रूप देने एवं संपादन कार्य में अपना सहयोग दें। श्री एस० कौसर लईक़ साहब ने बड़े ही मनोयोग के साथ इस पुस्तक का अवलोकन किया और इसमें कई आधारभूत परिवर्तन एवं संशोधन किए। हम उनके इस दुस्साध्य कार्य के प्रति आभारी हैं।

पुस्तक में भारतीय धर्मग्रन्थ के जो उद्धरण दिए गए थे श्री एस० कौसर लईक़ साहब ने उनका विशेष रूप से जायज़ा लिया और उद्धरण संबंधी त्रुटियों को दूर किया। इसके साथ-साथ उन्होंने भारतीय धर्मग्रंथों का अध्ययन करके विषयों से संबंधित बहुत-से उपयोगी और प्रभावकारी उद्धरण जुटाये और उन्हें पुस्तक में यथास्थान सम्मिलित किया। इस प्रकार इस पुस्तक की महत्ता और उपयोगिता पहले से कहीं अधिक बढ़ गई है। इस उपयोगी पुस्तक को संवर्धित और नवीन रूप में पाठकों की सेवा में प्रस्तुत करते हुए हमें हार्दिक प्रसन्नता का अनुभव हो रहा है। आशा है कि हमारे पाठक इस पुस्तक से यथासंभव लाभांवित होंगे।

पाठकों से हम निवेदन करेंगे कि वे अपने विचारों से हमें अवगत करें और यदि उन्हें पुस्तक में कहीं कोई त्रुटि और भूल दिखाई दे तो उससे भी हमें अवश्य सूचित करें। हम उनके आभारी होंगे।

ईश्वर से प्रार्थना है कि वह हमारे इस प्रयास को, जैसा कुछ हमसे बन पड़ा है, स्वीकृति प्रदान करे।

—प्रकाशक

विषय सूची

उद्धरण–संकेत

1.	ऋ०	ऋग्वेद
2.	यजु०	यजुर्वेद
3.	अथर्व०	अथर्ववेद
4.	वा० सं०	वाजसनेयी संहिता
5.	तै० सं०	तैत्तरीय संहिता
6.	तै० आ०	तैत्तरीय आरण्यक
7.	तै० ब्रा०	तैत्तरीय ब्राह्मण
8.	श० ब्रा०	शतपथ ब्राह्मण
9.	बृ० उ०	बृहदारण्यकोपनिषद्
10.	नि०	निरुक्तम्
11.	कठो०	कठोपनिषद्
12.	मनु०	मनुस्मृति
13.	म० भा०	महाभारत
14.	दे० भा०	श्री मद्देवी भागवत
15.	गीता	श्री मद्भगवद्गीता
16.	प्रे० क०	प्रेत कल्प
17.	म० नि०	मज्झिम निकाय

धारणाओं और दृष्टिकोणों का अध्ययन

किसी भी जाति की धारणा, विश्वास और दृष्टिकोणों के निरीक्षण एवं विश्लेषण के द्वारा उनमें सत्य और असत्य को प्रमाणित करना बहुत-ही कठिन काम है। इसमें एक तो व्यक्ति की व्यक्तिगत अभिरुचि और जातीय पूर्वाग्रह बाधक बनते हैं और दूसरे वास्तविकता से आदमी की अनभिज्ञता प्रायः उसे ग़लत दिशा की ओर उन्मुख कर देती है। इसका परिणाम यह होता है कि इस क्रम की उसकी सारी कोशिशें निष्फल हो जाती हैं। वह अपनी खोज का कोई ऐसा प्रतिफल प्रस्तुत करने में असफल रहता है, जिससे ज़ेहनों की गाँठें खुल सकें तथा सत्य और असत्य को असंदिग्ध रूप में देखा जा सके, बल्कि प्रायः इस तरह की कोशिशें उल्टे अधिक परेशानी का कारण बन जाती हैं।

जातियों के विचारों और दृष्टिकोणों पर जो काम किए गए हैं, उनका अगर आप जायज़ा लें, तो जो कुछ हमने कहा है उसकी सच्चाई की गवाही आप स्वयं देंगे। व्यवहारतः ऐसा संभव नहीं होता कि आदमी किसी चीज़ का केवल तटस्थ या निष्पक्ष अध्ययन करे और उसका अध्ययन उसे जिस परिणाम तक पहुँचा दे, उसे वह सहर्ष स्वीकार कर ले, बल्कि प्रायः होता यह है कि आदमी का पहले से अपना एक फ़ैसला होता है, फिर वह अपनी सारी कोशिशें केवल इसलिए करता है कि जो बात उसने पहले से समझ रखी है वह सत्य प्रमाणित हो जाए। इसलिए वह छानबीन करता और प्रमाण प्रस्तुत करता है। अपनी जाँच-पड़ताल के दौरान वह उन चीज़ों को प्रायः नज़रअंदाज़ कर जाता है या उनकी ग़लत व्याख्या करता है, जो उस नतीजे तक पहुँचने में सहायक नहीं होतीं, जिस तक वह पहुँचना चाहता है। स्पष्ट है, इसे अनुसंधान की कोई बौद्धिक-प्रक्रिया नहीं कही जा सकती। वास्तव में यह काम इतना मुश्किल है कि यदि मनुष्य नेक नीयत और तटस्थ भी हो तब भी सही नतीजे तक पहुँचना कोई सरल काम कदापि नहीं है।

ज़िन्दगी के दूसरे मामलों की तरह इस काम के लिए भी ईश्वर के पथ-प्रदर्शन की आवश्यकता होती है। ईश्वर के पथ-प्रदर्शन के बिना इस पथ से सुरक्षित गुज़रना लगभग असंभव है। क़ुरआन के अवतरण के पूर्व,

जबकि आसमानी पुस्तकें अपने असली रूप में सुरक्षित न थीं और न कोई ऐसा गिरोह ही शेष था, जो सत्य का सही प्रतिनिधित्व कर रहा हो। धर्मों की हालत बुझे हुए चिराग़ की-सी थी। लोग दीर्घकाल से बेख़बरी और बेहोशी की हालत में जी रहे थे। उस दौर में खोजबीन की जो कोशिशें हुई हैं, वे सत्य-मार्ग को स्पष्ट करने के बजाय सच्चाई को और अधिक संदिग्ध बनानेवाली ही थीं। क़ुरआन के अवतरण के बाद भी क़ुरआन के मार्गदर्शन से लापरवाह होकर जो शोध-कार्य होते रहे हैं, उनका मामला उन कामों से कुछ अधिक भिन्न नहीं है, जो क़ुरआन के अवतरण से पहले किए जा चुके हैं। वही असत्य को सत्य और सत्य को असत्य प्रमाणित कर दिखाने की खोज और कोशिश तथा बाल की ऐसी खाल निकाली गई है, जिनका सत्य और यथार्थ से दूर का भी सम्बन्ध नहीं।

दिव्य क़ुरआन : जातियों का एक विश्लेषणात्मक अध्ययन

क़ुरआन केवल दृष्टिकोणों और धारणाओं और कुछ क़ानूनों की किताब नहीं है। यह बात नहीं है कि इसमें कुछ धारणाओं और दृष्टिकोणों को निरपेक्ष रूप में प्रस्तुत करके उन्हें स्वीकार करने का आह्वान किया गया है। क़ुरआन अपनी विभिन्न विशेषताओं के अतिरिक्त जातियों के आचार-विचार का एक विश्लेषणात्मक अध्ययन भी है। यह किताब शुरू ही होती है जायज़ा और विश्लेषण के साथ। इसमें स्पष्ट रूप से सम्बोधित गिरोहों और गुज़री हुई कितनी ही जातियों की दशाओं का जायज़ा लिया गया है और उनके विचारों और व्यवहारों की तटस्थ समीक्षा की गई है। इस समीक्षा के द्वारा पाठक को इनसानों की जीती-जागती, हंगामों से भरी, दुनिया में ले जाकर सत्य से परिचित कराया गया है। इस आलोचनात्मक समीक्षा के परिणामस्वरूप सत्य हर प्रकार के संदेहों और आपत्तियों से शुद्ध होकर सामने आता है। फिर इन सत्यों को, जो जातियों और धर्मों के विश्लेषणात्मक अध्ययन से प्रमाणित होकर सामने आ जाते हैं, क़ुरआन के आख़िरी हिस्से में विभिन्न जगहों में प्रभावशाली और सुन्दर वर्णन-शैली में उल्लेख किया गया है। इस प्रकार पूरा क़ुरआन एक उच्चकोटि के वैज्ञानिक ढंग पर संकलित महसूस होता है।

क़ुरआन मजीद ने निरीक्षण और आलोचना की जो शैली अपनाई है, उसके द्वारा हम किसी भी जाति के विचार और व्यवहार का निरीक्षण कर सकते हैं और इस प्रकार शुद्ध निष्कर्ष पर पहुँचना हमारे लिए मुश्किल नहीं रहता। अतिशयोक्ति न होगी, यदि यह कहा जाए कि प्राचीन धार्मिक ग्रंथों की सही व्याख्या और विश्लेषण भी अगर कर सकते हैं, तो वे लोग नहीं जो उन ग्रंथों के माननेवाले हैं, बल्कि उनकी सही व्याख्या वही लोग कर सकते हैं, जो क़ुरआन के माननेवाले हों, क्योंकि उन्हीं के पास ऐसा प्रकाश है, जिसके द्वारा बिना किसी संदेह के किसी धार्मिक ग्रंथ का अध्ययन किया जा सकता है और यह देखा जा सकता है कि उसमें सत्य का कितना अंश पाया

जाता है और कितना अंश वह है जिसका सत्य और वास्तविकता से कोई सम्बन्ध नहीं हो सकता। क़ुरआन एक ओर हमें ज़िन्दगी की सीधी राह दिखाता है, दूसरी ओर वह लोगों के बीच पाए जानेवाले दृष्टिकोणों और विचारों और उनके आपसी मतभेदों का निर्णय भी करता है, बल्कि इसके अतिरिक्त वह उन विभिन्न और परस्पर विरोधी विचारों और दृष्टिकोणों का भी निपटारा करता है जो किसी एक ही जाति एव राष्ट्र के लोगों के बीच पाए जाते हों। क़ुरआन वस्तुतः कसौटी है जिसके द्वारा खरे-खोटे को आसानी से परखा जा सकता है।

इस सम्बन्ध में यह बात भी सामने रहे कि कोई जाति गुमराही और भटकाव में चाहे कितनी ही दूर क्यों न निकल गई हो और उसने अपनी किताब में चाहे कितने ही फेर-बदल क्यों न किए हों, उसमें सत्य के चिह्न फिर भी शेष रह जाते हैं, जिनके द्वारा उस जाति को पुनः सत्य की ओर लौटाया जा सकता है और उसे आसानी से यह बात बताई जा सकती है कि उसने कहाँ और किस तरह सत्य का दामन छोड़ा है।

कभी-कभी तो किसी भाषा का एक शब्द ही कितने ही रहस्यों का ऐसा उद्‍घाटन करता है कि बुद्धि चकित रह जाती है। यहाँ हम इस बात के स्पष्टीकरण के लिए कुछ उदाहरण प्रस्तुत करते हैं।

संस्कृत का एक शब्द 'श्मशान' है। श्मशान वर्तमान में उस स्थल को कहते हैं जहाँ मुर्दे जलाए जाते हैं। लेकिन यह शब्द स्वयं किसी और बात की सूचना देता है। श्मशान वस्तुतः मुर्दे जलाने की नहीं उसे दफ़न करने की जगह थी। यास्क ने अपने 'निरुक्त' में उत्पत्ति के आधार पर श्मशान शब्द के अर्थ दिए हैं— 'शरीर के लेटने की जगह।' आचार्य क्षिति मोहन सेन ने भी अपनी पुस्तक 'भारतीय संस्कृति' में लिखा है कि श्मशान का जो धातुगत अर्थ होता है, वह हमें बताता है कि श्मशान मुर्दे को दफ़न करने की जगह थी, न कि जलाने की। इस शब्द के सम्बन्ध में विचार व्यक्त करते हुए डॉ० भोलानाथ तिवारी अपनी पुस्तक 'शब्दों का जीवन' पृष्ठ 36 में लिखते हैं—

> "शब्द श्मशान यह बतलाता हैं कि हिन्दू पहले मुर्दे जलाते नहीं थे, बल्कि मुसलमानों और ईसाइयों की तरह गाड़ते थे। आजकल विद्वान दूसरे आधारों

पर भी इसी निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि आर्य पहले मुर्दे दफ़न करते थे। मुर्दा जलाने की प्रथा उन्होंने ग़ैर आर्यों से बाद में अपनाई है।''

वेदों में भी मुर्दे दफ़न करने के प्रमाण मिलते हैं। लाश को दफ़न करते समय मंत्र पढ़े जाते थे। उन मंत्रों से एक मंत्र प्रस्तुत है—

इदमिद् वा उ नापरं दिवि पश्यसि।
माता पुत्रं यथा सिचाभ्येनं भूम ऊर्णहि॥

(अथर्व०, 18/2/50)

''हे मृत पुरुष! यही है, दूसरा नहीं है। जो द्युलोक में तू सूर्य देखता है। हे पृथ्वी! तू इस मृत पुरुष को चारों ओर से ढाँप ले, जिस प्रकार पुत्र को माता अपने आँचल से ढाँपती है।''

एक उदाहरण और लीजिए। संस्कृत का एक शब्द 'पुत्र' है। 'पुत्र' कहते हैं बेटे को। यह शब्द यौगिक है— 'पुत्' और 'त्र' का। पुत् कहते हैं 'नरक' को और 'तर' अर्थात् रक्षक। बेटे को पुत्र इसलिए कहते हैं कि वह बाप को नरक से बचानेवाला होता है। तात्पर्य यह कि संतान से सबसे बड़ा फ़ायदा यह माना जाता है कि वह बाप के लिए 'नरक' से 'मुक्ति' का आधार हो सकती है।

किसी जाति या सम्प्रदाय में प्रचलित शब्द और विशेषतः उसके मूल धर्मग्रथों में प्रयुक्त शब्द उस जाति व समुदाय का प्रतिनिधित्व करते हैं। उन शब्दों के अर्थ और भाव से उसके दृष्टिकोणों और विश्वासों तथा परम्पराओं का सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है। कभी-कभी वे ऐसा अटल प्रमाण सिद्ध होते हैं, जिसका खण्डन संभव नहीं होता।

इसके अतिरिक्त किसी जाति के विचार और व्यवहार का पता उसके धर्मग्रंथों बल्कि उनका सुराग़ भग्नावशेष और खुदाइयों के द्वारा पाई जानेवाली वस्तुओं, भाषा-विज्ञान, दन्तकथाओं, लोककथाओं, लोकगीत इत्यादि से भी लगाया जा सकता है।

भारत की प्राचीन परम्पराएँ

क़ुरआन द्वारा प्रदत्त प्रकाश में जब हम भारत की प्राचीन और आधुनिक परम्पराओं को परखते हैं तो हमें सत्य के चिह्न स्पष्ट रूप से दिखाई देते हैं। विभिन्न परम्पराओं और विचारों ने सत्य और वास्तविक सदाचार को चाहे कितना ही विकृत क्यों न कर दिया हो, लेकिन ऐसी बात नहीं है कि सत्य के चिह्न बिलकुल ही मिट गए हों।

आख़िरत (परलोक) की धारणा एकेश्वरवाद पर विश्वास के बाद इस्लामी आह्वान का महत्वपूर्ण आधार है। इसमें संदेह नहीं कि विभिन्न कारणों से परलोक-विश्वास के विरोधी दृष्टिकोण को भारत में फलने-फूलने का मौक़ा मिला। लेकिन वास्तविकता यह है कि परलोकवाद की अवधारणा आज तक यहाँ के मन और मस्तिष्क से निकल नहीं सकी। वैचारिक विरोधों के कारण पारलौकिक विश्वास बुरी तरह क्षत-विक्षत और आहत हुआ है, इसमें कोई शक नहीं। लेकिन इसके बावजूद दिलों की आवाज़ आज भी वही है। ज़रूरत इस बात की है कि परलोक की धारणा की श्रेष्ठता और उसकी सत्यता को इस प्रकार स्पष्ट किया जाए कि लोगों के संदेहों का निवारण हो सके और वे उसे अपनी खोई हुई पूँजी समझ सकें। हम यहाँ कुछ ऐसी चीज़ें प्रस्तुत करना चाहेंगे जिससे आप अंदाज़ा कर सकेंगे कि परलोक-विश्वास भारतीय दृष्टिकोण से कोई अद्भुत विश्वास हरगिज़ नहीं है, बल्कि इसके विपरीत यही यहाँ का वास्तविक और प्राचीनतम विश्वास रह चुका है। यह दूसरी बात है कि सत्य के प्रकाश के मंद पड़ जाने के कारण विभिन्न विचार, दृष्टिकोण और दर्शनों को यहाँ कुछ ऐसा वर्चस्व प्राप्त हुआ कि यह विश्वास दबकर बल्कि प्रतिकूल चिन्तनों की विविधता में उलझकर रह गया। जो लोग सत्य की दावत लेकर उठें, उनका कर्तव्य है कि वे इस सम्बन्ध में सही विश्लेषण करके बताएँ कि भटकनेवाले कहाँ और किस तरह भटके और परलोक की सजग धारणा शेष न रहने की स्थिति

में किस तरह यथार्थपरक धर्म अधेरों में विलीन होकर रह गया, जिसका वास्तविक धार्मिक भावनाओं और लोगों के विचार और व्यवहार पर बड़ा ही अशुभ प्रभाव पड़ा है।

सत्य-धर्म से हटकर आदमी जो भी धर्म अपनाएगा वह सत्य की तुलना में निश्चित रूप से घटिया और निकृष्ट होगा और उसके प्रभाव के कारण लोगों की मानसिकता भी पस्ती ही की तरफ़ झुककर रह जाएगी। ऐसी स्थिति में मनुष्य अपने लिए जो जीवन-दर्शन एवं जीवनशैली अपनाएगा, उसमें भी उच्चता और व्यापकता की शान शेष नहीं रह सकती। फिर उससे यह आशा नहीं की जा सकती कि वह मनुष्य के लिए उस सुख-शान्ति और संतोष का साधन बन सकेगा, जिसकी तलाश सदा-सर्वदा मानव-प्रकृति को रही है।

वह जीवन जिसकी हमें तलाश है

इस्लामी दृष्टिकोण से वर्तमान संसार मानव का वास्तविक ठिकाना नहीं है। मानव-प्रकृति जिस संसार की खोज में है, वह कोई और ही लोक है, ऐसा लोक जहाँ हमारी सभी स्वाभाविक माँगें पूरी हो सकें। मानव-प्रकृति ऐसी ज़िन्दगी की तलाश में है जो नष्ट न हो, जहाँ मिलनेवाली ईश्वरीय नेमतें नष्ट न हों, जहाँ मानव शोक और संकटों से दो-चार न हो और जहाँ सत्य का सौन्दर्य पूरी तरह प्रकट हो। स्पष्ट है कि वर्तमान जगत् को यह विशेषता और विशिष्टता प्राप्त नहीं है। यहाँ जीवन के साथ मृत्यु अर्थात् निर्माण के साथ विनाश भी अनिवार्य है। यहाँ की सारी चीज़ें छिन जानेवाली हैं। यहाँ मनुष्य से उसके प्रियतम जन भी बिछुड़ जाते हैं। सत्यता भी यहाँ कृत्रिमता के आवरण में गौण दिखाई देती है। तात्पर्य यह कि मानव की इच्छाओं और मनोरम मनोकामनाओं की पूर्ति का कोई उपाय इस संसार में नज़र नहीं आता।

यहाँ मानव को शक्ति और योग्यता अत्यन्त सीमित मात्रा में प्राप्त है, जिसके साथ स्थायित्व का कोई सम्बन्ध नहीं। अतः मानव की उच्च अभिलाषाओं की पूर्ति का यदि कोई स्थान है तो वह किसी दूसरे ही लोक में है। यदि कोई अन्य लोक नहीं है तो इसका स्पष्ट अर्थ यह हुआ कि हमारी बहुत-सी इच्छाएँ और कामनाएँ, जो बहुत ऊँची और श्रेष्ठ हैं, बिलकुल निरर्थक हैं। हमारी उच्च कामनाओं का तो अस्तित्व है; जिनको प्रत्येक व्यक्ति अपने अन्दर पाता है; किन्तु उनके साकार होने का कहीं कुछ उपाय नहीं। — यह विचार ग़लत है। यह सत्य है कि जो ये उच्च कामनाएँ पाई जाती हैं निरर्थक नहीं हैं, वरन् सार्थक हैं, उनके निरर्थक होने का कोई तर्क उपलब्ध नहीं है। हम देखते हैं कि दुनिया की कोई चीज़ निरर्थक नहीं है। फूल व्यर्थ नहीं खिलते; हवाएँ यूँ ही निरुद्देश्य नहीं चला करतीं। सूरज, चाँद और तारों की परिक्रमा में इतनी तत्वदर्शिता छिपी हुई है कि उसे आकस्मिक और निरुद्देश्य समझना बुद्धि-विवेक के बिलकुल विरुद्ध है। हमें भूख-प्यास सताती है। यदि यह भूख-प्यास निरर्थक होती तो इसके उत्तर में प्रकृति अन्न और जल उपलब्ध न कराती। इसी तरह हम देखते हैं कि मनुष्य

में जो कामेच्छा पाई जाती है, वह भी व्यर्थ नहीं है। इस इच्छा की पूर्ति के लिए मनुष्य को जोड़े के साथ पैदा किया गया है। नर-नारी एक-दूसरे के बिना अपूर्ण और व्यर्थ हैं। दोनों की रचना किसी महान हस्ती का उपकार है, जो चीज़ें अलग-अलग होकर भी आपस में अत्यन्त गहरा सम्बन्ध रखती हैं, वे अनिवार्य रूप से कहीं एक होती हैं। वस्तुतः ईश्वरीय ज्ञान और मरज़ी की सतह पर ये एक हैं, उसी ने एक की आवश्यकता को दूसरे पर आश्रित किया है।

विचारणीय तथ्य यह है कि जब यहाँ हमारी भौतिक और मनोवैज्ञानिक आवश्यकताओं की पूर्ति का इतना परिपूर्ण प्रबंध पाया जाता है तो फिर यह कैसे संभव है कि हमारी उत्तम आकांक्षाएँ, एहसास, भावनाएँ और हमारी वे पवित्रतम अभिलाषाएँ निरर्थक हों जिनके स्रष्टा हम स्वयं नहीं, वरन् वही है, जिसने हमें अस्तित्व प्रदान किया है। अतः हमें मानना पड़ता है कि इस्लाम ने हमारा जो मार्ग-दर्शन किया है, वह सर्वाधिक सच्चा मार्ग-दर्शन है।

इस्लाम की दृष्टि में मानव की सभी कामनाएँ स्वाभाविक, उद्देश्यपूर्ण और सार्थक हैं। ईश्वर मानव की प्रत्येक उचित और स्वाभाविक माँगें पूरी करेगा। उसके समक्ष मानव को एक ऐसे लोक में बसाने की योजना है, जो मानवीय इच्छाओं और स्वाभाविक अभिलाषाओं के अनुसार, बल्कि उससे भी बढ़कर होगा। मानव को वहाँ वह सब कुछ प्राप्त होगा, जो यहाँ उसे प्राप्त नहीं हो पाता। मानव को वहाँ अमर जीवन और अनश्वर नेमतें प्राप्त होंगी। सत्य और असत्य का वहाँ ऐसा फ़ैसला होगा कि उसके बारे में किसी को संदेह की गुंजाइश नहीं होगी। ईश्वर के आज्ञाकारी और कृतज्ञ बन्दे वहाँ वह सब कुछ प्राप्त कर रहे होंगे, जो उनकी अभिलाषाओं से कहीं अधिक होगा। हाँ, अत्याचारी लोगों का जीवन वहाँ कष्टमय और यातनामय सिद्ध होगा।

वर्तमान लोक (जगत्) और यहाँ की नेमतें तो आगामी लोक की मात्र एक झांकी प्रस्तुत करती हैं। यह जीता-जागता जगत् किसी और वास्तविक लोक का विश्वास दिलाता है। यहाँ की चीज़ें मात्र चीज़ें नहीं हैं, बल्कि इनके द्वारा दूसरी ज़िन्दगी हमारे अनुभवों में आती है, अनुभव चाहे कितना ही कम और हलका क्यों न हो, इसकी महत्ता से इनकार संभव नहीं।

विश्वास प्राप्त करने के दो तरीक़े

किसी वस्तु पर विश्वास करने के दो उपाय हो सकते हैं। एक यह कि उसके पक्ष में बौद्धिक तर्क प्रस्तुत किए जाएँ और उसके संभव और बुद्धिसंगत होने का विश्वास दिलाया जाए। दूसरा उपाय यह है कि उसके कुछ हिस्से और नमूने (Sample and Specimen) सामने ला दिए जाएँ। नमूने की परिभाषा किसी अंग्रेज़ विद्वान ने क्या ही अच्छी दी है—

"A portion or part of any thing to show the kind and quality of the whole."

(अर्थात् किसी वस्तु का कोई अंश या भाग, जो सम्पूर्ण का प्रकार और उसके गुण को प्रकट करे।)

किसी मूर्त नमूने से जो सजग विश्वास और संतुष्टि प्राप्त होती है, वह कभी शुष्क बौद्धिक तर्क से हासिल नहीं होती। बौद्धिक तर्क किसी सत्य का केवल विश्वास दिलाता है, जबकि उसका नमूना मौजूद होने की स्थिति में मनुष्य इस सत्य का अनुभव करने, बल्कि उसे चखने और उसका स्वाद प्राप्त करने लगता है। बौद्धिक स्तर पर 'प्रेम' को जानने और स्वयं 'प्रेम' में पड़ने में जो अन्तर होता है, वही अन्तर यहाँ भी पाया जाता है।

क़ुरआन ने सत्य की प्रामाणिकता के लिए बौद्धिक तर्क ही पर बस नहीं किया, बल्कि इसके लिए उसने उपर्युक्त दूसरा उपाय भी अपनाया है। इस सम्बन्ध में उसने हमारे सामने सजीव उदाहरण प्रस्तुत किए हैं, जिनको उसने 'आयात' कहा है। क़ुरआन ने एकेश्वरवाद और परलोक इत्यादि महानतम सत्यों के लिए बौद्धिक तर्क के साथ जगत् और जीवन में पाई जानेवाली 'आयात' और प्रमाणों की ओर भी संकेत किया है। इन प्रमाणों को खुली आँखों से देखने के बाद पूरे विश्वास के साथ कहा जा सकता है कि जिन सच्चाइयों की सूचना क़ुरआन देता है,उनका खण्डन वास्तव में पूरे ब्रह्माण्ड और अपने आसपास, बल्कि स्वयं हमारे अपने अस्तित्व का खण्डन है। जीवन और यहाँ विद्यमान वस्तुओं के मनोरम दर्पण में क़ुरआन ने जीवन

की वास्तविकताओं को प्रकट किया है। इसके बाद भी अगर कोई उसकी ओर ध्यान नहीं देता है तो वह सजीव नहीं, निर्जीव अर्थात् मृत है और उसकी छाती चैतन्य आत्मा से हीन है। आँखें रहते हुए भी वह अंधा है, कान होते हुए भी बहरा है। सत्य को प्राप्त करने के लिए आवश्यक है कि आदमी के अन्दर जीवन हो। सत्य और वास्तविकता से जिन लोगों को इनकार है, उनके अन्दर वास्तव में जीवन किंचित्मात्र भी शेष नहीं है। वे बुद्धि-विवेक के दानवीय स्तर पर जी रहे हैं। सत्य से परचित तो वही लोग हो सकते हैं, जिनमें जीवन हो, जानने की इच्छा हो। क़ुरआन ने इसी बात का स्पष्टीकरण इन शब्दों में किया है—

> ''यह तो केवल एक अनुस्मृति है और स्पष्ट क़ुरआन है, ताकि प्रत्येक उस व्यक्ति को सचेत कर दे, जो जीवित हो। और इनकार करनेवालों पर बात साबित हो जाए।'' (क़ुरआन, 36 / 69-70)

परलोकवाद के विरुद्ध धारणाएँ और दृष्टिकोण

परलोकवाद के विरुद्ध, जो दृष्टिकोण संसार में पाए जाते हैं,उनमें से एक दृष्टिकोण वह है, जिसे भौतिकवादियों ने अपना रखा है। वे कहते हैं कि वर्तमान लोक ही सब कुछ है, इससे हटकर कोई और जीवन नहीं, जिसकी प्रतीक्षा की जाए। मृत्यु सदा-सर्वदा के लिए जीवन का अन्त कर देती है। उसके बाद न कोई जीवन है और न कोई हिसाब-किताब और न कहीं स्वर्ग-नरक का अस्तित्व है। क़ुरआन ने ऐसे लोगों के बारे में कहा है—

> ''ये लोग कहते हैं कि बस यही हमारा पहली बार का मरना है और फिर हम दोबारा (जीवित करके) उठाए जानेवाले नहीं हैं। यदि तुम सच्चे हो तो हमारे पूर्वजों को (जीवित करके) ले आओ।''(क़ुरआन, 44 / 34-36)

इस तरह की बातें करनेवाले रुककर अपनी बात पर विचार नहीं करते वरना उन्हें अपनी भूल का बहुत जल्द एहसास हो जाए। वे नहीं सोचते कि यदि दूसरी बार जीवन की प्राप्ति असंभव है तो पहली बार संभव कैसे हो गई।

कुछ लोग पारलौकिक जीवन (आख़िरत) को तो मानते हैं और स्वर्ग-नरक को भी मानते हैं, परन्तु इसके साथ वे कुछ ऐसी बातें भी मानते हैं, जिससे परलोक की धारणा की सार्थकता ही समाप्त हो जाती है। उदाहरणार्थ वे यह मानते हैं कि ख़ुदा ने अपने इकलौते बेटे को सलीब (सूली) पर मौत देकर मनुष्य के कुकर्मों-गुनाहों का कफ़्फ़ारा (प्रायश्चित) अदा कर दिया है। अपने बुरे कर्म के बुरे परिणाम से बचने की एक ही राह है और वह यह कि मनुष्य ईसा मसीह को ईश्वर का पुत्र माने और उस पर विश्वास करे। यह दृष्टिकोण विभिन्न पहलुओं से हास्यास्पद है। ईश्वर को अगर मनुष्य का गुनाह (पाप) माफ़ ही करना था, तो इसके लिए बेटे को सूली पर चढ़ाने की क्या ज़रूरत थी? इसके लिए बेटे पर विश्वास करना ही प्रर्याप्त हो सकता था।

इसी तरह कुछ दूसरे लोग इस भ्रान्ति के शिकार हैं कि कुछ बुज़ुर्ग हस्तियाँ उन्हें आख़िरत में आनेवाली विपत्तियों से मुक्ति दिला सकती हैं और जब वे अड़ जाएँगी तो ख़ुदा अवश्य ही उनकी बात मानकर रहेगा। उनकी सिफ़ारिशों से हमारा बिगड़ा काम बन जाएगा। ऐसे लोग यह नहीं सोचते कि यदि इस प्रकार की सिफ़ारिश और पैरवी से काम चल सकता तो फिर दुनिया बनाने की कुछ भी ज़रूरत नहीं थी, जिसमें मानव को कठोर परीक्षा से गुज़रना पड़ता है, जिसमें एक ओर तो उसे अपनी शक्ति और योग्यता और अपनी कृतज्ञता की परीक्षा देनी पड़ती है तो दूसरी ओर उसे जीवन के विभिन्न मामलों में भी कितने ही संकटों और कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है, जिससे पूर्ण रूपेण स्पष्ट होता है कि ये कठिनाइयाँ और मामले ऐसे कारण और साधन की हैसियत रखते हैं जो चरित्र के निर्माण और उसके विकास के लिए आवश्यक थे। यह बात दूसरी है कि मनुष्य उससे फ़ायदा उठाने के बजाए अपने को विनाश के गढ़े में गिरा दे और वह अवसर जो कायनात (ब्रह्माण्ड) को गर्दिश में लाकर उसके लिए उपलब्ध किया गया है, नष्ट कर दे।

इसी प्रकार एक विश्वास 'आवागमन' का है। इसे 'पुनर्जन्म' भी कहते हैं। इस विश्वास के अनुसार मनुष्य अपने कर्मों का फल पाने के लिए इसी वर्तमान लोक में बार-बार जन्म लेता है। अपने कर्म के अनुसार कभी वह मनुष्य योनि में जन्म लेता है और कभी जानवर और कीड़े-मकोड़े या पेड़-पौधे बनकर संसार में पलटकर आता है। इस विचारधारा को एक समय में बहुत प्रसिद्धि प्राप्त रही है। यूनान में भी कुछ लोग इसे मानने लगे थे और रोम में भी इसको स्वीकृति प्राप्त हो गई थी। मिस्र के प्राचीन इतिहास में भी इस विश्वास की झलक दिखाई देती है। बाहरी कारणों और प्रभावों के कारण एक समय यहूदियों में भी यह विश्वास प्रवेश कर गया था। लेकिन अब यह विचारधारा या तो संसार के कुछ देशों में पाई जाती है या फिर भारत के हिन्दुओं, बौद्धों, जैनियों इत्यादि में इसे प्रसिद्धि प्राप्त है।

आधुनिक ज्ञान-विज्ञान ने जीवन से सम्बन्धित जो जानकारियाँ उपलब्ध

कराई हैं, उन्होंने इन सभी विचारधाराओं का खंडन कर दिया है, जिन पर आवागमन का विश्वास आधारित था। आवागमन की विचारधारा को यदि ज्ञान और तर्क की रौशनी में देखा जाए तो उसके असत्य होने में कोई संदेह नहीं हो सकता।

आवागमन का सिद्धान्त केवल परलोक के ही ख़िलाफ़ नहीं है, बल्कि स्वयं धर्म और धार्मिक विश्वासों, भावनाओं और अनुभूतियों को भी इससे बहुत नुक़सान पहुँचा है। इस विचारधारा को यदि व्यावहारिक रूप से अपना लिया जाए तो धर्म का कोई मूल्य सभ्य और शिक्षित लोगों की दृष्टि में शेष नहीं रह सकता। फिर तो एक शक्ति बनकर उनके उभरने की सारी ही संभावनाएँ ख़त्म होकर रह जाएँगी। इस विचारधारा के माननेवाले भी इसे व्यावहारिक ज़िन्दगी से दूर रखते हैं। वे व्यावहारिक जीवन में इसको नहीं अपनाते और शायद अपना भी नहीं सकते।

इस विचारधारा में सामान्य बुद्धि के लिए यदि कोई आकर्षण और सार्थकता पाई जाती है तो वह केवल यह है कि इस विचारधारा की दृष्टि से मनुष्य का सम्बन्ध अपनी ज़मीन से नहीं टूटता, क्योंकि इस विचारधारा के अनुसार मनुष्य मरने के बाद भी किसी न किसी रूप में इस ज़मीन से जुड़ा रहता है। धरती से आदमी का लगाव और सम्बन्ध उसे कुछ आगे सोचने का अवसर ही नहीं देता। काश! वह समझ सकता कि जीवन की संभावनाएँ इस सीमित संसार से कहीं बढ़कर हैं।

यहाँ इसका अवसर नहीं है कि आवागमन की विचारधारा के बौद्धिक और मनोवैज्ञानिक और व्यावहारिक पहलुओं पर विस्तृत विवेचना की जा सके। परन्तु एक आधारभूत तथ्य की ओर हम अवश्य ध्यान आकृष्ट कराएँगे। वह यह कि पशुओं और पेड़–पौधों के अध्ययन से प्रमाणित होता है कि जड़ पदार्थों की बात तो दूर स्वयं जानवरों और मनुष्यों के बीच इतनी दूरी है कि उसे पार नहीं किया जा सकता। पेड़–पौधों और जानवरों में आत्मचेतना सिरे से होती ही नहीं। आत्मचेतना केवल मनुष्य में पाई जाती है। यह समझना अत्यन्त बेसुधपन और मूर्खता की बात होगी कि जानवरों या पेड़–पौधों में मानव की भांति आत्मा पाई जाती है। जानवरों और पेड़ों आदि में मानवीय आत्मा का कोई चिह्न नहीं मिलता। फिर यह कैसे कहा जा सकता है कि

मानवीय आत्माओं को जानवरों या पेड़–पौधों के रूप में अपने पिछले कर्मों का फल मिल रहा है।

यदि कोई 'बुद्धिमान' यह कहे कि दण्ड के रूप में मानवीय आत्मा को ऐसे जानवरों की आत्मा और जड़ पदार्थों की आत्मा में बदल दिया गया है जो आत्मचेतना–रहित हैं तो उसे सोचना चाहिए कि मानवीय आत्मा और जानवरों की आत्मा में इतना अन्तर है कि यदि किसी मानवीय आत्मा को जानवरों की आत्मा में बदल दिया जाए, तो वह आत्मा और व्यक्तित्व ही बाक़ी नहीं रहेगा जो पहले था। इस प्रकार तो एक दूसरी ही आत्मा अस्तित्व में आ जाती है। जब आत्मा और व्यक्तित्व ही बाक़ी न रहा तो सज़ा किसे मिलेगी। यदि यह स्वीकार कर भी लिया जाए कि जानवर और पेड़ आदि किसी दण्ड का परिणाम (प्रकटीकरण) हैं तो यह सज़ा मानवीय आत्मा को नहीं बल्कि दूसरों ही को मिल रही है, जिनका पाप–कर्म से दूर का भी सम्बन्ध नहीं। ये पेड़–पौधे और पशु, जड़ और चेतन तो मानव के लिए नेमत हैं। उनको पाप और गुनाह का प्रतिफल कहना अत्यन्त घोर अन्याय है। यदि पाप और गुनाह के द्वारा हमें ये चीज़ें मिलती हैं तो पाप और गुनाह को मानवता के लिए एक अनिवार्य आवश्यकता की संज्ञा देनी पड़ेगी, बल्कि यह मानना पड़ेगा कि संसार की सुन्दरता और आबादी ही पाप और अपराध के कारण विद्यमान है।[1] इस परिस्थिति में हमारे दिलों में ईश्वर के लिए कृतज्ञता की कोई भावना नहीं उभरेगी। हम इस दुनिया को और इसकी नेमतों को किसी और ही दृष्टि से देखने लगेंगे। निर्धन और संकटग्रस्त लोगों को हम इस दृष्टि से देखेंगे कि ये बड़े पापी हैं। पापी न होते तो इस हालत में क्यों पहुँचते।[2]

---

1. अर्थात् हम जितना अधिक पाप और अपराध करेंगे उतनी ही बड़ी संख्या में पेड़–पौधे, पशु–पक्षी पैदा होंगे, जिससे भोजन, वस्त्र और आवास के लिए अधिकाधिक वस्तुएँ प्राप्त होंगी और हम ख़ुशहाल होंगे। इतना ही नहीं, प्रदूषित होते वातावरण भी सुधर जाएँगे। अतः इस दृष्टि से पाप करना अनिवार्य और बहुत ही लाभदायक हो जाएगा।

2. इस सम्बन्ध की विस्तृत वार्ता आपको हमारी किताब 'परलोक की छाया' में मिलेगी।

आवागमन का सिद्धांत वेदों की शिक्षा के भी विरुद्ध है। वेदों के अध्ययन से मालूम होता है कि आर्य आख़िरत अर्थात आवागमनीय विहीन पारलौकिक विश्वास को मानते थे। उनका विश्वास यह था कि मृत्यु के पश्चात् मानव को केवल एक दूसरी ज़िन्दगी मिलती है जो मनुष्य के अपने कर्मों के अनुसार अच्छी या बुरी होती है। श्रुति और ब्राह्मण काल में पितरलोक की धारणा पाई जाती थी जिसमें आवागमन की धारणा की सिरे से कोई गुंजाइश न थी। आगे चलकर सूत्रकाल में परलोक की धारणा के साथ आवागमन का सिद्धान्त भी सामने आता है। और आगे पुराणों का दौर आते-आते परलोक, आवागमन दोनों ही विचारधाराएँ समान रूप से मिलने लगती हैं। वेद आवागमन या पुनर्जन्म के पक्ष में नहीं हैं, यह एक वास्तविकता है। जो लोग वेदों से आवागमन को प्रमाणित करने की कोशिश करते हैं, वे न्याय से काम नहीं लेते। कुछ लोगों ने तो क़ुरआन से भी आवागमन को प्रमाणित करना चाहा है। परन्तु इस प्रकार के प्रयासों का सत्य और वास्तविकता से कोई सम्बन्ध नहीं है। डॉक्टर राधा कृष्णन ने लिखा है कि वेदों में आवागमन की विचारधारा नहीं मिलती।[1] और यही विचार अनेक वेदज्ञों का है। प्रसिद्ध प्राच्य-विद्या विशारद मैक्समूलर, जिसने वेदों पर काम किया किया है, लिखता है—

> ''वेदों में आवागमन की विचारधारा नहीं मिलती, बल्कि एक अंतिम दिन—आख़िरत (परलोक) की विचारधारा पाई जाती है।''

सिद्धार्थ विद्यालंकार लिखते हैं—

> ''वेदों में आवागमन का सिद्धान्त नहीं है। इस बात पर तो मैं जुआ भी खेल सकता हूँ (अर्थात् बाज़ी भी लगा सकता हूँ)।''
>
> (आवागमन, पृ० 104)

डाँ परांडा चौहान (Dr. Parada Chauhan) ने लिखा है—

> ''वेदों में पुनर्जन्म मिलता है तो ज़रूर, परन्तु उसमें इस जन्म के बाद केवल एक जन्म का उल्लेख है, हज़ारों जन्मों का नहीं।''
>
> (पुनर्जन्म और वेद, पृ० 93)

जीवन के पश्चात् मृत्यु के सम्बन्ध में क़ुरआन ने जो स्पष्ट धारणा

---

1. Indian Philosophy, Vol. I P-113-116

प्रस्तुत की है उसके सही होने में किसी संदेह की गुंजाइश नहीं है। यह धारणा किसी अनुमान पर आधारित होने के बजाए ईश्वरीय संकेत पर आधारित है। क़ुरआन अपनी विभिन्न विशेषताओं के अतिरिक्त संरक्षक और साक्षी भी है। अर्थात् इसने पिछली सभी ईश्वरीय शिक्षाओं को अपने अन्दर सुरक्षित कर रखा है। जिसने क़ुरआन का अध्ययन कर लिया, उसने मानो सभी ईश्वरीय ग्रंथों और ईशदूतों की आधारभूत शिक्षाओं का अध्ययन कर लिया। मूल रूप से क़ुरआन कोई नया दृष्टिकोण या नया सन्देश लेकर नहीं उतरा है। जब क़ुरआन परलोक-विश्वास का समर्थन और पुष्टि करता है तो इसके अर्थ ये होते हैं कि जीवन के पश्चात् मृत्यु के सम्बन्ध में परलोक-विश्वास का दृष्टिकोण ही सभी सत्यधर्मों का दृष्टिकोण रहा है। प्राचीन ग्रंथों में स्पष्ट रूप से ऐसे संकेत और उल्लेख मिलते भी हैं जिनसे इस दृष्टिकोण का समर्थन होता है कि सत्य-धर्म सदा ही परलोकवाद के विश्वास का वाहक रहा है। दूसरे विश्वास और दृष्टिकोण मात्र लोगों की अपनी कल्पनाओं की उपज हैं।

परलोक की धारणा और प्राचीन भारत

परलोक की धारणा एक विश्वव्यापी धारणा है। इसे आर्येतर या अभारतीय दृष्टिकोण समझना बहुत बड़ी भूल है। इस विचारधारा को स्वीकार करने का अर्थ यह हरगिज़ नहीं है कि हम कोई अभारतीय दृष्टिकोण अपना रहे हैं। यद्यपि सत्य के मामले में सिरे से यह देखने की ज़रूरत नहीं होती कि वह भारतीय है या अभारतीय। सत्य जहाँ और जिस रूप में पाया जाए वह सारी मानवता की सामूहिक पूँजी है।

इस समय ज़िन्दगी के दूसरे पहलुओं को नज़रअन्दाज़ करते हुए हमें सिर्फ़ परलोक की धारणा के सम्बन्ध में भारतीय परम्पराओं का जायज़ा लेना है और यह दिखाना है कि विभिन्न ख़राबियों और समय के उलट-फेर के बावजूद किस तरह परलोक-विश्वास के गहरे प्रभाव भारतीय विचारों और चिन्तनों पर पाए जाते हैं। आवागमन के सिद्धान्त की मौजूदगी भी परलोक-विश्वास को मिटा देने में असफल हुई है। यह वास्तव में परलोक-विश्वास की प्राकृतिक और मानवीय भावनाओं के बिलकुल अनुकूल होने का एक स्पष्ट प्रमाण है। यह इस बात की भी दलील है कि प्राचीन भारत में परलोक-विश्वास की जड़ें इतनी गहरी और मज़बूत रह चुकी हैं कि उसे पूरी तरह भुला देना लोगों के लिए संभव नहीं हो सका।

भारतीय परम्पराओं के सम्बन्ध में हमारा अध्ययन आर्यों की सभ्यता एवं संस्कृति पर जाकर ठहर जाता है। इसके आगे हम कुछ और नहीं देखते। इसमें कुछ तो हमारी ग़लतफ़हमी का दख़ल है और कुछ हमारी मजबूरियाँ भी हैं। आर्यों से पहले जो जातियाँ यहाँ थीं उनके बारे में शोध कार्य बहुत कम हुआ है। आर्यों से पहले की जातियों की भाषाओं और उनके साहित्य एवं इतिहास के बारे में जानकारी प्राप्त करने के साधन आज हमारे पास बहुत कम बाक़ी रह गए हैं। फिर भी अब यह स्वीकार किया जाने लगा है कि आर्यों से भी पहले भारत में महान द्रविड़ सभ्यता मौजूद रही है। उसके प्रभाव बाद में आनेवाली जातियों पर तो पड़े ही हैं, आश्चर्य की बात

यह है कि द्रविड़ सभ्यता का सम्बन्ध सुदूर मिस्र और बेबिलोन तक से मिलता नज़र आता है। इसी तरह कोल भाषाओं के अध्ययन से भी ये तथ्य सामने आए हैं। कोल जाति को अब तक केवल असभ्य और बर्बर जाति समझकर नज़रअंदाज़ किया जाता रहा है। लेकिन बाद के शोध बताते हैं कि हमारा यह रवैया ठीक नहीं था। कोल भाषाओं का सम्बन्ध आस्ट्रेलिया और एशिया में फैली हुई विभिन्न भाषाओं से सिद्ध होता है। हमारे बहुत-से शहरों के नाम कोल भाषा ही के हैं। इसके अतिरिक्त अनेकानेक उपयोगी वस्तुओं के नाम मूलतः कोल भाषाओं से लिए गए हैं। इसी तरह विभिन्न दृष्टिकोण और विश्वास जो बाद में आनेवाली जातियों के अपने दृष्टिकोण और विश्वास समझे जाते हैं, उनका रिश्ता भी कोल जाति से मिलता है। लेकिन इस सिलसिले में काम अभी बहुत कम हो सका है। कुछ थोड़े-से रहस्य प्रोफ़ेसर सिलवां लेवी और उनके शिष्यों के भाषावैज्ञानिक शोधों से सामने आए हैं। यदि इस सिलसिले में कुछ अधिक काम हुआ तो यहाँ की जातियों की हिदायत और गुमराही की कितनी ही गुमशुदा कड़ियों का पता लगाया जा सकता है।

अभी हम यहाँ प्राचीन भारत की प्रसिद्ध और ज्ञात पुस्तकों ही के दायरे -तक अपनी बातचीत सीमित रखेंगे।

मृत्यु क्या है?

सबसे पहले मृत्यु के सम्बन्ध में भारतीय दृष्टिकोण का जायज़ा लीजिए। वेद, उपनिषद, महाभारत, गीता इत्यादि भारत की कितनी ही पुस्तकें हैं जो बताती हैं कि मृत्यु से जीवन का अन्त नहीं होता, केवल भौतिक शरीर का अन्त होता है। मरने के बाद भी मानव अपने व्यक्तित्व के साथ शेष रहता है। गीता में कहा गया है—

य एनं वेत्ति हन्तारं यश्चैनं मन्यते हतम्।
उभौ तौ न विजानीतो नायं हन्ति न हन्यते॥

(गीता, 2 / 19)

"जो इस आत्मा को मरनेवाला समझता है तथा जो इसको मरा हुआ मानता है, वे दोनों ही नहीं जानते, (क्योंकि) यह आत्मा (वास्तव में) न (तो किसी को) मारता है और न (किसी के द्वारा) मारा जाता है।"

अव्यक्तादीनि भूतानि व्यक्तमध्यानि भारत।
अव्यक्तनिधनान्येव तत्र का परिदेवना॥

(गीता, 2 / 28)

"हे अर्जुन! सम्पूर्ण प्राणी जन्म से पहले अप्रकट थे (और) मरने के बाद भी अप्रकट हो जानेवाले हैं, (केवल) बीच में ही प्रकट हैं। (फिर) ऐसी स्थिति में क्या शोक करना है?"

ज्ञात हुआ कि आत्मा का शरीर से अलग अपना अमर अस्तित्व है। शरीर के मर जाने से आत्मा नहीं मरती। वह शेष और जीवित रहती है।

पितरलोक

मृत्यु के पश्चात् और परलोक से पहले जो समयान्तराल पाया जाता है उसमें मनुष्य कैसे और कहाँ रहता है, इसके सम्बन्ध में भी वेदों में रौशनी डाली गई है। इस सम्बन्ध में वेदों में पितरलोक की धारणा मिलती है। पितरलोक से तात्पर्य वह लोक है जहाँ हमारे बाप-दादा और दूसरे लोग मरने के बाद पहुँचते हैं। वेदों में इसका विस्तृत वर्णन मिलता है। इसके कुछ उदाहरण हैं--

जीवानामायुः प्र तिर त्वमग्ने पितृणां लोकमपि गच्छन्तु ये मृताः।
सुगार्हपत्यो वितपन्नरातिमुषामुषां श्रेयसी धेह्यस्मै॥

(अथर्व० 12/2/45)

"हे अग्ने! तू जीवों की आयु निर्विघ्नता के साथ पार कर दे तथा जो मर चुके हैं वे पितृलोक में चले जावें। उत्तम गार्हपत्य अग्नि शत्रु को ताप देवे। प्रत्येक ऊषा काल इसके लिए कल्याणमय कर देवे।"

ये चेह पितरो ये च नेह याँश्च विद्म याँ उ च न प्रविद्म।
त्वं वेत्थ यति ते जातवेदः स्वधाभिर्यज्ञꣳ सुकृतं जुषस्व॥

(यजु० 19/67)

"इस लोक में वर्तमान पितर, इस लोक से परे स्वर्ग आदि लोकों में वर्तमान पितर और जिन्हें हम जानते हैं तथा जिन्हें हम नहीं जानते, वे सब जितने भी हैं, उन्हें हे अग्ने! तुम ही जानते हो। अतः स्वधा के द्वारा इस श्रेष्ठ अनुष्ठान का सेवन करो।"

सं गच्छस्व पितृभिः सं यमेनेष्टापूर्तेन परमे व्योमन्।
हित्वायावद्यं पुनरस्तमेहि सं गच्छस्व तन्वा सुवर्चाः॥[1]

(ऋ० 10/14/8)

"हे मेरे पिता! तुम उत्तम स्वर्ग में जाकर अपने पितरों से, यम से और अपने

---

1. यही श्लोक कुछ पाठभेद के साथ अथर्व 18/3/58 एवं तै० आ० 6/4/2 में भी पाया जाता है। -संपादक

श्रौत-स्मार्त कर्मों के फलों से मिलो, तुम अपना पाप छोड़कर व्रियमान, नामक घर में आओ एवं शोभन दीप्तिवाले शरीर से मिलो।''

महाभारत के अनुशासन पर्व के अध्याय 145 में है—

''जगत् में कर्मानुसार उत्तम, मध्यम और अधम तीन प्रकार के प्राणी होते हैं। यथायोग्य उन सभी प्राणियों को लेकर वे यमलोक में पहुँचाते हैं।........ उत्तमपुरुषों को अंत के समय ले जाने के लिए जो यमदूत आते हैं, वे सुन्दर वस्त्राभूषणों से विभूषित होते हैं और उन पुरुषों को साथ ले रमणीय मार्ग द्वारा सुखपूर्वक ले जाते हैं। मध्यमकोटि के प्राणियों को मध्यम मार्ग के द्वारा योद्धा का वेष धारण किए हुए यमदूत अपने साथ ले जाते हैं। तथा चाण्डाल का वेष धारण करके अधमकोटि के प्राणियों को पकड़कर उन्हें डाँटते-फटकारते तथा पाशों द्वारा बाँधकर घसीटते हुए 'दुर्दर्श' नामक मार्ग से ले जाते हैं।''

यमलोक में जब प्राणी पहुँचा दिए जाते हैं, जहाँ यमराज कई हज़ार सदस्यों से घिरा हुआ अपनी सभा में विराजमान होता है। वहाँ उन प्राणियों के साथ कैसा व्यवहार किया जाता है, इसका वर्णन भी महाभारत में मिलता है।

गतानां तु यमस्तेषामुत्तमानभिपूजयेत्।
अभिसंगृह्य विधिवत् पृष्ट्वा स्वागतकौशलम्॥
प्रस्तुत्य तत् कृतं तेषां लोकं संदिशते यमः।
यमेनैव मनुज्ञाता यान्ति पश्चात् त्रिविष्टपम्॥

(13/145)

अर्थात् ''यमलोक में गए हुए प्राणियों में से जो उत्तम होते हैं उन्हें विधिपूर्वक अपनाकर स्वागतपूर्वक उनका कुशल-समाचार पूछकर यमराज उनकी पूजा करते हैं। उनके कर्मों की भूरि-भूरि प्रशंसा करके यमराज उन्हें यह संदेश देते हैं कि 'आपको अमुक पुण्य लोक में जाना है।' यमराज की ऐसी आज्ञा पाने के पश्चात् वे स्वर्गलोक में जाते हैं।''

यह तो उत्तमकोटि के मनुष्यों के साथ यमराज का व्यवहार है। अधमकोटि के मनुष्यों के साथ भी यमराज का व्यवहार द्रष्टव्य है—

अधमान् पाशसंयुक्तान् यमो नावेक्षते गतान्।
यमस्य पुरुषा घोराश्चण्डाल समदर्शनाः॥
यातनाः प्रापयन्त्येताँल्लोकपालस्य शासनात॥
भिन्दन्तश्च तुदन्तश्च प्रकर्षन्तो यतस्ततः।
क्रोशन्तः पातयन्त्येतान् मिथो गर्तेष्ववाङ्मुखान्॥

(महाभारत, अनुशासन पर्व, अध्याय 145)

अर्थात् "पाशों में बँधे हुए जो अधमकोटि के प्राणी आते हैं, यमराज उनकी ओर आँख उठाकर देखते तक नहीं हैं। चाण्डाल के समान दिखाई देनेवाले भयंकर यमदूत ही लोकपाल यम की आज्ञा से उन पापियों को यातना के स्थानों में ले जाते हैं। वे उन्हें विदीर्ण किए डालते हैं, भांति-भांति की पीड़ाएँ देते हैं। जहाँ-तहाँ घसीटकर ले जाते हैं तथा उन्हें कोसते हुए नीचे मुँह करके नरक के गढ्ढों में गिरा देते हैं।"

गरुड़ पुराण के प्रेतकल्प (35/2-8) में है कि—

यमलोक में एक महान् नदी है, जिसका नाम वैतरणी है। यह यमराज के द्वार पर है। इस नदी का विस्तार 100 योजन है। उइस नदी में बहुत दुर्गंध आती है। इसमें पूय (मवाद), रक्त, मांस की कीचड़ और जल भरा हुआ है। पूय कृमियों से घिरा रहता है तथा वज्र तुण्डों के द्वारा समाहत होता है। शिशुमार, मास्य आदि वज्र कर्तरिका और अन्य मास हिंसक जल जीवों से मेरी वह वैतरणी परिपूर्ण रहती है। पापी उसे देखते ही भयभीत हो जाते हैं। वहाँ पर बारह सूर्य जिस प्रकार प्रलय के अंत में तपा करते हैं वैसे ही ताप देते हैं। पापी लोग उसमें गिरते, रोते, चिल्लाते और क्रन्दन करते हैं। पापी जब इस नदी में गिरते हैं तब ये हा भाई, हा पुत्र, हा माता के शब्द उच्चारण करके बुरी तरह प्रलाप किया करते हैं।

इसी पुराण में यह भी है[1]—

---

1. संपादक की ओर से विशेष अभिवृद्धि

तस्मिन्पुरवरं रम्ये प्रेतानाञ्च गणो महान्।
पुष्पभद्रा नदी तत्र न्यग्रोधः प्रियदर्शनः॥
पुरे तत्र विश्रामं धाप्यते यमकिंकरैः।
जाया पुरवादिकं सौख्यं स्मरते तत्रदुखितः॥
क्रन्दते करुणैर्वाक्यैस्तृषार्त्तः श्रमपीड़ितः।
स्वधनं स्वसुखनीह गुहपुत्र धनानि च।
भृत्यमित्राणि धान्यञ्च सर्व शोचति वै तदा।
क्षुधार्त्तस्य पुरे तस्मिकिंकरैस्तस्यचोच्यते॥
क्व धनं क्व सुता जावा क्व सुहृत्क्व त्वमीदृशः।
स्वकर्मेणाजित भुङ्क्ष्व मूढचेताश्चरं पथि॥

(प्रेतकल्प 6 / 3-7)

''उस याम्यपुर में प्रेतों (मृत-मनुष्यों) का एक महान् समुदाय है। वहाँ पुष्पभद्रा नामवाली एक नदी है और एक वट का वृक्ष है जो देखने में बहुत प्रिय लगता है। उस पुर में यम के किंकरों (दूतों) के द्वारा उसे विश्राम प्राप्त कराया जाता है। वहाँ पर वह प्रेत अपनी स्त्री और पुत्र आदि के मुख का स्मरण करता है और बहुत दुखित होता है। करुणा से भरे हुए शब्द कहता हुआ वह वहाँ पर रोता है। प्यास से पीड़ित होता है और थकान से अत्यंत दुखित हुआ करता है। उस समय वह अपने सुख, गृह, पुत्र, मृत्यु, मित्र, धान्य और अतुल वैभव-संपत्ति के छूट जाने का सोच करता है। उस पुर में क्षुधा से दुखित इसके यम के दूतों के द्वारा कहा जाता है। यम के किंकरों ने कहा— अरे, हे मूर्ख! अब गई बीती बातों का यहाँ क्यों स्मरण करके यों रो रहा है। यहाँ तेरा वह धन कहाँ है ? न तेरे पुत्र हैं और न भार्या (पत्नी) ही है। यहाँ तेरा कोई मित्र भी नहीं है। तूने जो जैसा कर्म किया है,उसे इस लम्बे मार्ग में चिरकाल तक भोग। तू बहुत ही मूढ़ चित्तवाला है।''

मरे हुए लोग कहाँ रहते हैं? वेदों में उनका निवास-स्थान अंतरिक्ष

बताया गया है।[1]

वेदों और शास्त्रों से ज्ञात होता है कि यम, पितरलोक का राजा और संरक्षक है।[2]

यास्क रचित निरुक्तम् में है कि—

''पितरों का राजा यम है।''[3]

मृत्यु के 'फ़रिश्ते' को वेदों में यमदूत या मृत्युदूत कहा गया है। वेदों के अनुसार मानव-प्राण को यमदूत निकालकर ले जाते हैं—

मृत्युर्यमस्यासीद् दूतः प्रचेता असून् पितृभ्यो गमयां चकार।।

(अथर्व०, 18/2/27)

''यम का जो मृत्युदूत है उस प्रकृष्ट ज्ञानी मृत्यु ने इसके प्राणों को पितरों के लिए अर्थात् पितरों के पास पितृलोक में भेज दिए हैं।''[4]

पितरलोक को इस्लामी शब्दावली में 'आलमे-बरज़ख़' कहा जाता है। अरबी में दो वस्तुओं के मध्य के परदे या आड़ को बरज़ख़ कहते हैं। उपनिषद् की भाषा में इसे 'सन्ध्या' कहा गया है, क्योंकि यह इस वर्तमान जीवन को परलोक के जीवन से मिलाता है। उपनिषद् के शब्द इस प्रकार

---

1. *अथर्ववेद में है—*

ये नः पितुः पितरो ये पितामहा य आविविशुरुर्व1 न्तरिक्षम्।

य आक्षियन्ति पृथिवीमुत द्यां तेभ्यः पितृभ्यो नमसा विधेम्॥

(अथर्व० 18/2/ 49)

''जो हमारे पिता के पितर (अर्थात् पूर्वज) हैं और जो उनके भी पितामह हैं जो कि विशाल अंतरिक्ष में प्रविष्ट हुए हैं और जो पृथ्वी तक द्युलोक में निवास करते हैं, उन पितरों के लिए नमस्कारपूर्वक पूजा करते हैं।''

—संपादक

2. यमं राजानं हविषा दुवस्य (ऋ० 10/14/1, अथर्व० 18/1/49, नि० 10 /12 एवं इसी संदर्भ में तै० आ० 6 /1/1 एवं अथर्व० 12/3/1 भी देखे जा सकते हैं। —संपादक

3. पितृणां राजा यमः (निरुक्तम् 11/13) —संपादक

4. इसी संदर्भ में अथर्व० 8/8/11, 8/2/11 और ऋ० 10/14/12, भी देखे जा सकते हैं। —संपादक

हैं—

तस्य वा एतस्य पुरुषस्य द्वे एव स्थाने भवत,
इदं च परलोकस्थानं च सन्ध्यं तृतीयँ।
स्वप्नस्थानं तस्मिन्सन्ध्ये स्थाने तिष्ठन्नेते,
उभे स्थाने पश्यतीदं च परलोकस्थानं च॥

(बृ०उ०, 4/3/9)

"इस मनुष्य के लिए दो ही स्थान हैं : एक इहलोक और दूसरा परलोक। तीसरे बीच वाले का नाम संध्या है। वह निंद्रा का स्थान है। इस मध्यवर्ती स्थान में रहकर पुरुष इहलोक और परलोक का दर्शन करता है।"

सतपथ ब्राह्मण में भी बताया गया है कि 'पितरलोक' में आत्मा की स्थिति स्वप्न की-सी होती है। शंकराचार्य ने भी, जो उपनिषदों के सुप्रसिद्ध भाष्यकार हुए हैं, लिखा है कि—

"वस्तुतः लोक दो ही हैं। एक यह जो वर्तमान लोक है और दूसरा परलोक। तीसरा स्थान सन्ध्या अर्थात् मध्यवर्ती सीमा है जो उन दोनों जगतों के बीच में स्थित है।"

इस तरह हम देखते हैं कि भारत के धार्मिक ग्रंथों और यहाँ के प्राचीन चिन्तन में जीवन के पश्चात् मृत्यु के बारे में पर्याप्त प्रकाश डाला गया है जो इस्लामी अवधारणा के निकट और आवागमन की धारणा के बिलकुल विरुद्ध है।

परलोक

क़ुरआन कहता है कि एक समय आएगा जब वर्तमान विश्व का विनाश हो जाएगा। इसके बाद एक अन्य लोक का नए सिरे से निर्माण होगा। मरे हुए लोग ज़िन्दा किए जाएँगे। उनके कर्म और विश्वासों का निरीक्षण किया जाएगा। लोग अपने कर्म और विश्वासों के अनुसार स्वर्ग या नरक में जाएँगे। ब्रह्माण्ड की व्यवस्था के विनाश को 'प्रलय' कहा जाता है। प्रलय की सूचना क़ुरआन ओर बाइबिल के अतिरिक्त भारत के ग्रंथों में भी दी गई हैं। उदाहरणार्थ श्रीमद्‌भागवत् महापुराण में कहा गया है कि प्रलय का कारण उपस्थित हो जाने पर सब प्राणियों का संघात रूपी ब्रह्माण्ड प्रकृति में जाकर लय हो जाता है। और जल पृथ्वी के गुणगन्ध को ग्रहण कर लेता है और जल से आप्लव होने पर निर्गन्ध पृथ्वी का प्रलय हो जाता है।[1] इसके बाद परलोक की अवस्था आएगी । परलोक का जीवन, वेद के अनुसार, अत्यन्त शानदार होगा। पारलौकिक जीवन को वेद में 'दिव्य जन्म' कहा गया है और कहा गया है कि यह जीवन उनको प्राप्त होता है जो अपने जीवन में हर समय ईश-प्रियता को अपनाए रहते हैं। उनके जीवन की पवित्रता और उच्चता का रहस्य भी यही है कि जीवन के हर क्रिया-कलाप में ईश्वर उनके सामने रहता है। यह चीज़ सिर्फ़ बाहरी रस्मों और आडम्बरों को पूरा करने से कभी प्राप्त नहीं हो सकती।

परलोक एक परिपूर्ण लोक है, जहाँ मानव पूरी तरह जाग्रत अवस्था में होगा। कठोपनिषद में इसका स्पष्टीकरण करते हुए कहा गया है कि पितरलोक में आत्मा की स्थिति स्वप्न के समान होती है। वर्तमान संसार में जो हालत है, वह जागरण की अवस्था है, लेकिन पूर्ण जाग्रतावस्था परलोक में ही प्राप्त होगी।

---

1. 12/4/6 एवं 12/4/14 —संपादक

परलोक में अच्छे लोगों को स्वर्ग में जगह मिलेगी, जबकि बुरे लोगों का ठिकाना नरक होगा। वेदों में 'जन्नत' को 'स्वर्ग' और 'दोज़ख़' को 'नरक' कहा गया है। स्वर्ग केवल किसी कैफ़ियत या हालत का नाम नहीं, जो वर्तमान संसार में किसी पर छा जाती है, जैसा कि कुछ विचारक समझते हैं, बल्कि स्वर्ग वस्तुतः नित्य रहनेवाला 'लोक' है। यही कारण है कि स्वर्ग और उसके समानार्थक शब्दों— सुकृतस्य; अपरिमितम्, देव, अक्षय, आदि— के साथ लोक शब्द वैदिक ग्रंथों में प्रयुक्त हुए हैं।[1] अर्थात् इन्हें स्वर्गलोकम् देवलोकम्, नाकलोकम् इत्यादि कहा गया है। स्वर्ग, नाक, देव आदि शब्द जीवन के परमानन्द को प्रकट करते हैं। नाक का अर्थ 'निरुक्तम्' के इस कथन से स्पष्ट होता है कि इस स्थान को पानेवाले को कुछ भी दुःख नहीं होता।[2] ब्राह्मण ग्रंथों में भी यही बात कही गई है कि इस स्थान पर पहुँचनेवाले को कुछ भी दुःख नहीं होगा।[3] ब्राह्मण ग्रंथ वस्तुतः वेदों के व्याख्यान-ग्रंथ हैं।

'कम्' का अर्थ ख़ुशी और सुख है।[4] इसका विपरीत शब्द 'अकम्' है, जिसका अर्थ है— दुख। अतः न+अक= नाक अर्थात् जहाँ दुख का अभाव हो, वह नाक है।

'देव' शब्द का अर्थ दिव्य है और दिव्य के अर्थ हैं— स्वर्गीय, अलौकिक, उज्ज्वल, मनोहर, सुन्दर। अतः देवलोक का अर्थ हुआ— वह जगत् जहाँ मनोहरता एवं उज्ज्वलता और सुन्दरता है। ये समस्त गुण सुखदायकता एवं आनंददायकता के हैं।

---

1. देखिए : यजु० 15/10-14, अथर्व 2/10/7, 4/34/2, 5-7, 9/5/18, 19, 22, 26, 18/3/71; ऋ० 1/164/50, मनु० 4/182 आदि —संपादक

2. ते ह नाकं महिमानः समसेवन्ते यत्र पूर्वे साध्याः सन्ति देवाः साधनाः। (निरुक्तम् 12/28) —संपादक

3. दे०- श० ब्रा० 6/3/3/14, 8/4/1/24, 10/2/2/2 —संपादक

4. कम् इति सुखनाम (निरुक्तम्) —संपादक

स्वर्ग, नाक, देव इत्यादि वास्तव में सुख के स्थान का नाम है। निरुक्त का कथन है—

"जिनके कर्म अच्छे होते हैं, वही वहाँ जाते हैं।"[1]

(निरुक्तम्, अध्याय 2 पाद: 4)

मनुसमृति में भी स्वर्ग के जो प्रयोग मिलते हैं, उनसे साफ़ ज़ाहिर होता है कि वह एक विशेष स्थान का नाम है। उदाहरणार्थ मनुस्मृति में इस प्रकार के कथन मिलते हैं—

"स्वर्गं स गच्छति।" (मनु०, 3 / 18)

अर्थात् वह स्वर्ग को जाता है।

"स गच्छति परं स्थानं तेजो मूर्तिपथर्जुना।"

(मनु०, 3 / 93)

अर्थात् वह सीधे मार्ग से ज्योति स्वरूप 'परमधाम' को प्राप्त होता।

"गच्छत्यमरलोकताम्।" (मनु०, 2 / 5)

अर्थात् वह अमर लोक को जाता है।

वैदिक साहित्य एवं धर्मशास्त्रों में लोक शब्द प्राय: स्थान और जगह के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है।[2] ऋग्वेद में यह शब्द 28 बार प्रयुक्त हुआ है। दो बार बहुवचन के रूप में भी आया है। यजुर्वेद में लगभग 50 बार यह शब्द प्रयुक्त हुआ है। सायणाचार्य ने उन स्थानों पर इसका अनुवाद प्राय: 'स्थान' ही किया है। उनसे कोई कैफ़ियत या मनोदशा का अर्थ लेना सही नहीं होगा।

---

1. पुण्यकृतो ह्येव तत्र गच्छन्ति। —संपादक

2. यथा—: "अस्मा एतं पितरो लोकमक्रन" अर्थात् पितरो ने इस मृत मनुष्य के लिए यह 'स्थान' आक्रमित किया है। (ऋ०10/14/9, अथर्व० 18/1/55, वा०सं० 12/45, तै०सं० 4/2/4/1 , तै०ब्रा० 1/2/1//16, तै०आ० 1/27/5, 6/6/1) —संपादक

कर्म-तुला

स्वर्ग या जन्नत उन्हीं लोगों के हिस्से में आएगी जो सही अर्थों में इसके पात्र होंगे। संसार में लोग अच्छे या बुरे जैसे भी कर्म करते हैं; उनका रिकार्ड सुरक्षित किया जा रहा है। हिन्दू धर्मशास्त्रों के अनुसार ये कर्म देवताओं द्वारा लिखे जा रहे हैं। मनुस्मृति में है—

मन्यन्ते वै पापकृतो न कश्चित्पश्यतीति नः।
तास्तु देवाः प्रपश्यन्ति स्वस्यैवान्तरपूरुषः॥

(मनु०, 8 / 85)

"पाप करनेवाले समझते हैं कि हमें पाप करते कोई नहीं देखता, परन्तु देवता और उनके अंतर्गत आत्मा-स्वरूप पुरुष उन पापों को देखते रहते हैं।"

कर्म को सुरक्षित रखनेवाले का पुराणों में 'चित्रगुप्त' के नाम से उल्लेख किया गया है। जबकि क़ुरआन में कर्म के लिखनेवालों को 'किरामन कातिबीन' कहा गया है। परलोक में कर्मपत्र के तौलने का उल्लेख भी भारतीय धर्मग्रंथों में मिलता है। शतपथ ब्राह्मण में है—

"वे उसको (अर्थात् मनुष्य के कर्मों को) उस लोक में तराज़ू पर रखते हैं, और जो पल्ला भारी होगा उसी को प्राप्त होगा, साधु का या असाधु का। जो इस रहस्य को समझता है वह इस लोक में भी उठ जाता है, और उस लोक में तुला से बच जाता है। क्योंकि पुण्य प्रबल होता है, पाप नहीं।"

(श०ब्रा०, 11/2/7/33)

तात्पर्य यह है कि जो कर्मतुला पर विश्वास रखता है, वह इस वर्तमान संसार में अपने कर्मों को नापता रहता है, ताकि आगामी जीवन में बुराइयों का पलड़ा भारी न होने पाए और वह ईश-प्रकोप से बच जाए।

स्वर्ग ?

इसी वर्तमान संसार को सब कुछ समझ लेना बहुत बड़ी अज्ञानता है। इसके अलावा भी एक दुनिया है, जहाँ स्वर्ग और नरक हैं। यह बात क़ुरआन ही से नहीं हिन्दू धर्मशास्त्रों से भी स्पष्ट होती है। वेदों के विवरण के अनुसार स्वर्ग इस वर्तमान जगत् के अतिरिक्त है। यही कारण है कि वर्तमान दुनिया के लिए यदि 'इमम्', 'अयम्' 'अत्रः', 'अत्रास्मिन्' इत्यादि निकटता सूचक शब्द प्रयोग किए गए हैं तो स्वर्गलोक के लिए 'अमम्', 'तत्र', 'तस्मिन्', 'परामन्' आदि दूरवर्ती सूचक शब्द प्रयोग किए गए हैं, जिससे पूर्णरूपेण स्पष्ट हो जाता है कि स्वर्ग वर्तमान लोक में नहीं, बल्कि परलोक में है।

इसके अतिरिक्त वेदों के अनेक मंत्रों में स्वर्गलोक को तृतीय रजस, त्रिनाके, त्रिविद्, त्रिभ्यः काण्ड्य, त्रित्स्याम बताया गया है, जिसका अर्थ है कि कोई तीसरा लोक है, तीसरा सुख का स्थान है, वह आकाश में तीसरा स्थान है, वह तीसरे अन्तरिक्ष में है और यहाँ से तीसरा है। वेदों में वर्तमान लोक को स्वर्ग नहीं कहा गया है।

अथर्ववेद में है—

पृष्ठात्पृथिव्या अहमन्तरिक्षमारुहमन्तरिक्षाद् दिवमारुहम्
दिवो नाकस्य पृष्ठात् स्व१र्ज्योतिरगामहम्।

(4/14/3)

"मैं पृथ्वी की पीठ अर्थात् भूलोक से अंतरिक्ष लोक और अंतरिक्ष से स्वर्ग लोक पर चढ़ता हूँ। दुखरहित स्वर्ग की पीठ से मैं सूर्य मंडल में स्थित हिरण्यगर्भ रूपी ज्योति को प्राप्त करता हूँ।"

अर्थात् प्रथम लोक भूलोक है, जिसे इहलोक भी कहा गया है, दूसरा अंतरिक्ष लोक है और तीसरा स्वर्गलोक है।[1]

इससे यह मालूम होता है कि स्वर्ग एक विशेष प्रकार का लोक है, जो वर्तमान लोक से उच्च और उत्तम लोक है। उसे वेद में 'परम लोक' भी कहा गया है।

---

1. उपनिषद में दो ही लोक माने गए हैं। इहलोक और परलोक। बृहादारण्यकोपनिषद् में है—

तस्य वा एतस्य पुरुषस्य द्वे एव स्थाने भवत इदं च परलोकस्थानं च॥

(4/3/9)

अर्थात् "इस पुरुष के लिए इहलोक और परलोक ये दो ही स्थान हैं।"

स समानः सन्नुभौ लोकावनुसंचरति॥ (बृ०उ०, 4/3/7)

"वही समान रूप से दोनों लोकों (इहलोक और परलोक) में संचरित होता है।"

—संपादक

स्वर्ग क्या है ?

स्वर्ग मानव का इच्छित लोक है; ऐसा लोक जिसकी कामना की जाए; जो मनुष्य की अंतिम शरण-स्थली है, जिसमें किसी प्रकार की कोई कमी या अभाव नहीं है। ऋग्वेद में है—

यत्र ज्योतिरजस्त्रं यस्मिन् लोके स्वर्हितम्।
तस्मिन् मां धेहि पवमानाऽमृते लोके अक्षित इन्द्रायेन्दो परि स्त्रव।।

(ऋ०, 9 / 113 / 7)

"हे पवित्र सोम! जहाँ अखण्ड तेज है और जिस लोक में सूर्य-स्वर्ग-सुख स्थित है, उस अमर और अक्षीण लोक में मुझे रख। हे सोम, तुम इन्द्र के लिए बहो।"

यत्र कामा निकामाश्च यत्र ब्रध्नस्य विष्टपम्।
स्वधा च यत्र तृप्तिश्च तत्र माममृतं कृधीन्द्रायेन्दो परि स्त्रव

(ऋ० 9 / 113 / 10)

"जिस लोक में श्रेष्ठ काम्यमान और प्रार्थनीय देवता रहते हैं, जहाँ प्रतापी सूर्य का स्थान है, और जहाँ स्वधा के साथ दिया गया अन्न और तृप्ति है, वहाँ तू मुझे अमर कर। हे सोम! इंद्र के लिए प्रवाहित होओ।"

यत्रानुकामं चरणं त्रिनाके त्रिदिवे दिवः।
लोका यत्र ज्योतिष्मन्तस्तत्र माममृतं कृधी॥

(ऋ० 9 / 113 / 9)

"जिस उत्तम स्वर्ग लोक में— तीसरे लोक में सूर्य अपनी इच्छा के अनुसार घूमता है, और जहाँ लोकजन तेजोमय हैं, वहाँ मुझे अमर करो।"

यत्रानन्दाश्च मोदाश्च मुद : प्रमुद आसते।
कामस्य यत्राप्ताः कामास्तत्र माममृतं कृधी॥

(ऋ० 9 / 113 / 11)

"जहाँ आनन्द और हर्ष, अह्लाद और प्रमोद ये चार प्रकार के आनन्द हैं, जहाँ अभिलाषी की सारी कामनाएँ पूर्ण होती हैं, वहाँ मुझे अमर करो (अर्थात् उस अमरलोक में स्थान दो)।"

ये आनन्द जिनका उल्लेख इस मंत्र में किया गया है, संभोग से सम्बन्धित आनन्द हैं और विशेषकर 'प्रमोद' तो वेदों में संभोग के आनन्द के लिए ही आता है। इससे मालूम हुआ कि स्वर्ग में लोगों को पत्नियाँ भी मिलेंगी। इसका प्रमाण वेद के दूसरे वर्णनों से भी मिलता है। ऋग्वेद में है—

भोजा जिग्युः सुरभिं योनिमग्रे भोजा जिग्युर्वध्वं१ या सुवासाः।

(ऋ० 10/107/9)

"उदार दाता प्रथम घी, दूध देनेवाली उत्तम गाय को पाते हैं, वे उदार दाता जो उत्तम सुंदर वस्त्र धारण करती है ऐसी वधू-स्त्री प्राप्त करते हैं।"

भोजायाश्वं सं मृजन्त्याशुं भोजायास्ते कन्या३ शुम्भमाना।
भोजस्येदं पुष्करिणीव वेश्म परिष्कृतं देवमानेव चित्रम्॥

(ऋ० 10/107/10)

"दाता को शीघ्रगतिवाला अश्व अलंकृत करके दिया जाता है। दानशील के लिए वस्त्र-आभूषणादि से आभूषित सुन्दर स्त्री सेवा के लिए उपस्थित रहती है। दाता का ही यह गृह पुष्करिणी के समान निर्मल— अनेक फूलों से सुशोभित और देवों के मंदिरों के समान अद्‌भुत मनोहर सुसज्जित होता है।"

स्वर्ग में आदमी बूढ़ा नहीं होगा और न वहाँ किसी को मौत आएगी—

स्वर्गा लोका अमृतेन विष्ठा॥ (अथर्व०, 18/4/4)

"स्वर्गलोक अमरता से व्याप्त है अर्थात् वे मरणरहित हैं।"

तेभिर्याहि पथिभिः स्वर्गं यत्रादित्या मधु भक्षयन्ति तृतीये नाके अधि वि श्रयस्व॥ (अथर्व०, 18/4/3)

"उन मार्गों से स्वर्ग को जा, जहाँ कि अर्थात् जिस स्वर्ग में कि अखण्डनीय सामर्थ्यवाले श्रेष्ठ कर्म करनेवाले जन अमृत को खाते हैं अर्थात् आनन्द भोगते हैं। तीसरा जो स्वर्ग लोक है उसमें जाकर विश्रान्ति ले— आरामकर।"

अथर्ववेद में है कि वहाँ से कोई निकाला नहीं जाएगा—

सो ऽरिष्ट न मरिष्यसि न मरिष्यसि मा विभेः।
न वै तत्र म्रियन्ते नो यन्त्यधमं तमः॥

(अथर्व०, 8/2/24)

"हे आहिंसित पुरुष! तू नहीं मरेगा, तू नहीं मरेगा, अतः मत डर। वहाँ नहीं मरते हैं, तथा हीन अंधकार के प्रति भी नहीं जाते हैं।"[1]

उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात्॥

(ऋ०, 7/59/12)

"जैसे डंठल से बेर टूटता है, उसी प्रकार हमें मृत्युबंधन से मुक्त करो और अमृत से अलग नहीं।"[2]

स्वर्ग मात्र आत्मिक नहीं है। वहाँ मनुष्य शरीर के साथ रहेगा। वेद में है—

यद् वो अग्निरजहादेकमङ्ग पितृलोकं गमयं जातवेदाः
तद् व एतत् पुनरा प्याययामि साङ्गाः स्वर्गे पितरो मादयध्वम्॥

(अथर्व०, 18/4/64)

"हे प्रेत, तुम्हारे जिस अंग को अग्नि ने दूर फेंककर भस्म नहीं किया है। उसे मैं पुनः अग्नि में डालकर तुम्हारी वृद्धि करता हूँ। तुम पूर्ण अंगवाले होकर स्वर्ग की ओर गमन करते हुए प्रसन्नता प्राप्त करो।"

कठोपनिषद् में स्वर्ग को इस प्रकार परिभाषित किया गया है—

स्वर्गे लोके न भयं किंचनास्ति न तत्र त्वं न जरया बिभेति।
उभे तीर्त्वाशनायापिपासे शोकातिगो मोदते स्वर्गलोके॥

(कठो० 1/1/12)

"स्वर्गलोक भयकारक नहीं है। वहाँ मृत्यु का भी भय नहीं रहता। न वहाँ वृद्धावस्था डराती है। स्वर्गलोक में मनुष्य भूख-प्यास को पारकर, शोक से निवृत्त होकर आनन्द प्राप्त करते हैं।"

---

1. इसका भावार्थ वेदों के भाष्यकार महामहोपाध्याय पं० दामोदर सातवलेकर जी लिखते हैं—"अब तू नहीं मरेगा। अतः अब डरने का कारण नहीं है। जहाँ कोई मरते नहीं और जहाँ अँधेरा नहीं, ऐसे स्थान में तुझको लाया है।" —संपादक

2. यही बात अथर्व० 14/1//17, यर्जु० 3/6०, तै० सं० 1/8/6/2, निरुक्तम् 14/35 में भी वर्णित है —संपादक

स्वर्ग के कुछ दृश्य

भारतीय धर्मशास्त्रों में वर्णित स्वर्ग के कुछ दृश्य और उसकी कुछ विशेषताएँ यहाँ प्रस्तुत हैं—

घृतह्रदा मधुकूलाः सुरोदकाः क्षीरेण पूर्णा उदकेन दध्ना।
एतास्त्वा धारा उप यन्तु सर्वाः स्वर्गेलोके मधुमत्पिन्वमाना
उप त्वा तिष्ठन्तु पुष्करिणीः समन्ताः ॥

(अथर्व०, 4/34/6)

"घी के प्रवाहवाली, मधुर रस के तटवाली, निर्मल जल से युक्त जल, दही और दूध से परिपूर्ण ये सब धाराएँ तुझे प्राप्त हों। स्वर्गलोक में मधुर रस को देनेवाली सब नदियाँ तेरे समीप उपस्थित हों।"

भोजायाश्वं सं मृजन्त्याशुं भोजायास्ते कन्या३ शुम्भमाना।
भोजस्येदं पुष्करिणीव वेश्म परिष्कृतं देवमानेव चित्रम्॥

(ऋ०, 10/107/10)

"दानदाता पुरुष द्रुतगामी और अलंकृत अश्व तथा सुन्दर नारी को प्राप्त करता है। पुष्करणी के समान स्वच्छ और देव मंदिर के समान रमणीय घर भी उसे मिलता है।"

महाभारत के अनुसार वास्तव में स्वर्ग पुण्य कर्मों से मिलनेवाली दुनिया है। वहाँ पर वह नन्दन वन है, जहाँ इच्छानुसार रूप धारण करके लोग अप्सराओं के साथ विहार करते हुए निवास करते हैं। आदि पर्व में अष्टक एवं ययाति की वार्ता उद्धृत है, जिसमें ययाति अपने स्वर्गिक यात्रा के अनुभव का वर्णन करते हुए कहते हैं—

तथावसं नन्दने कामरूपी संवत्सराणामयुतं शतानाम्।
सहाप्सरोभिर्विहरन् पुण्यगन्धान् पश्यन् नगान् पुष्पितांश्चारुरूपान्॥

(89/19)

"इसी प्रकार मैं नन्दनवन में इच्छानुसार रूप धारण करके अप्सराओं के साथ विहार करता हुआ दस लाख वर्षों तक रहा। वहाँ मुझे पवित्र गंध और

मनोहर रूपवाले वृक्ष देखने को मिले जो फूलों से लदे हुए थे।''

सभापर्व में है—

चित्रांगदाश्चित्रमाल्याः सर्वे ज्वलित कुण्डलाः।
सुकृतैः कर्मभिः पुण्यैः पारिबर्हैश्च भूषिताः॥
(2/8/37)

''सभी अद्‌भुत बाजूबंद, विचित्रहार और जगमगाते हुए कुण्डल धारण करते हैं। वे अपने पवित्र शुभ कर्मों तथा वस्त्राभूषणों से भी विभूषित होते हैं।''

तथैवाप्सरसो राजन् गन्धर्वाश्च मनोरमाः।
नृत्यवादित्रगीतैश्च हास्यैश्च विविधैरपि॥
(2/7/24)

''राजन्! इसी प्रकार मनोहर अप्सराएँ तथा सुन्दर गंधर्व नृत्य, वाद्य, गीत एवं नाना प्रकार के हास्यों द्वारा मनोरंजन करते हैं।''

इन्द्रसभा अर्थात् स्वर्ग का ही वर्णन करते हुए एक और स्थान पर कहा गया है—

जराशोकक्लमापेता निरातंका शिवा शुभा।
वेश्मासनवती रम्या दिव्यपादपशोभिता॥
(2/7/3)

''उसमें जीर्णता (बुढ़ापा), शोक और थकावट आदि का प्रवेश नहीं है। वहाँ-भय नहीं है, वह मंगलमयी और शोभासंपन्न है। उसमें ठहरने के लिए सुन्दर-सुन्दर महल और बैठने के लिए उत्तमोत्तम सिंहासन बने हुए हैं। वह रमणीय सभा दिव्य वृक्षों से सुशोभित होती है।''

उपनिषद भी इस बात की पुष्टि करते हैं कि ब्रह्मलोक अर्थात् स्वर्गलोक में न अपराध है और न अत्याचार और न अंधकार का नामोनिशान पाया जाता है, वहाँ कोई बीमारी भी नहीं, वह प्रतिफल-स्थल है और सदैव प्रकाशमान् रहता है।

स्वर्ग के कुछ वृक्षों का उल्लेख भी वेदों में मिलता है।

उदाहरणार्थ—

यस्मिन्वृक्षे मध्वदः सुपर्णा निविशन्ते सुवते चाधि विश्वे।
तस्येदाहुः पिप्पलं स्वाद्वग्रे तन्नोन्नशद्यः पितरं न वेद॥

(ऋ०, 1/164/22)

"जिस वृक्ष पर मधु को पीनेवाले सुपर्ण पक्षी बसेरा करते हैं और प्रजा उत्पन्न करते हैं। उस वृक्ष के सबसे ऊपर मीठे-मीठे फल हैं, मगर जो पिता को (अर्थात् ईश्वर को) नहीं जानता, वह उन मीठे फलों को नहीं पा सकता।" [1]

द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते।
तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्त्यनश्नन्नन्यो अभि चाकशीत॥ [2]

(ऋ० 1/164/20)

"हमेशा साथ रहनेवाले तथा अत्यन्त मित्र दो उत्तम पंखवाले पक्षी एक ही वृक्ष का आलिंगन किए हुए हैं। उनमें एक उस पेड़ के मीठे-मीठे फलों को खाता है, और दूसरा उन फलों को न खाता हुआ केवल प्रकाशित होता है।"

स्वर्ग में वाद्य और गीतों का आनन्द भी मौजूद है। छान्दोग्योपनिषद् में है—

अथ यदि गीतवादित्रलोककामो भवति संकल्पादेवास्य।
गीतवादित्रे समुत्तिष्ठतस्तेन गीतवादित्रलोकेन संपन्नो महीयते॥

(8/2/8)

"और यदि वह गीत-वाद्य आदि से सम्बन्धित लोक की कामना करनेवाला होता है तो उसके द्वारा किए हुए संकल्प से ही गीत-वाद्य आदि वहाँ उपस्थित हो जाते हैं। गीत-वाद्य आदि लोक से युक्त वह महान वृद्धि को प्राप्त होता है।"

स्वर्ग के सौंदर्य का वर्णन महाभारत में विस्तृत रूप से पाया जाता है।

---

1. यही बात अथर्ववेद (9/9/21) में भी है। —संपादक

2. यह मंत्र अथर्ववेद (9/9/20), मुण्डकोपनिषद (3/1//1) और श्वेताश्वतरोपनिषद् (4/6) में भी पाया जाता है।

उनमें से कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं—

बीभत्समशुभं वापि तत्र किंचिन्न विद्यते।
मनोज्ञाः सर्वतो गन्धाः सुखस्पर्शाश्च सर्वशः॥
शब्दाः श्रुतिमनोग्राह्याः सर्वतस्तत्र वै मुने।
न शोको न जरा तत्र नायासपरिदेवने॥
ईद्दशः स मुने लोकः स्वकर्मफलहेतुकः।
(म०भा०, 3/261/10-12)

''वहाँ (स्वर्ग में) किसी को भूख-प्यास नहीं लगती, मन में कभी ग्लानि नहीं होती, गर्मी और जाड़े का कष्ट भी नहीं होता और न कोई भय ही होता है। वहाँ कोई भी वस्तु ऐसी नहीं है जो घृणा करने योग्य एवं अशुभ हो। वहाँ सब ओर मनोरम सुगन्ध, सुखदायक स्पर्श तथा कानों और मन को प्रिय लगनेवाले मधुर शब्द सुनने में आते हैं। मुने! स्वर्गलोक में न शोक होता है, न बुढ़ापा। वहाँ न थकावट और न करुणा-जनक विलाप श्रवण गोचर होते हैं। महर्षे! स्वर्गलोक ऐसा ही है। अपने सत्कर्मों के फल रूप ही उसकी प्राप्ति होती है।''

तैजसानि शरीराणि भवन्त्यत्रोपपद्यताम्।
कर्मजान्येव मौद्गल्य न मातृपितृजान्युत॥
न संस्वेदो न दौर्गन्ध्यं पुरीषं मूत्रमेव च।
तेषां न च रजो वस्त्रं बाधते तत्र वै मुने॥
न म्लायन्ति स्त्रजस्तेषां दिव्यगन्धा मनोरमाः॥
संयुज्यन्ते विमानैश्च ब्रह्मन्नेवंविधैश्च ते॥
ईर्ष्याशोकक्लमापेता मोहमात्सर्यवर्जिताः।
सुखं स्वर्गजितस्तत्र वर्तयन्ते महामुने॥
(म०भा०, 3/261/13-16)

''मुद्गल! स्वर्गवासियों के शरीर में तैजस तत्व की प्रधानता होती है। वे शरीर पुण्यकर्मों से ही उपलब्ध होते हैं। माता-पिता के रजोवीर्य से उनकी उत्पत्ति नहीं होती। उन शरीरों में कभी पसीना नहीं निकलता, दुर्गन्ध नहीं आती तथा मल-मूत्र का भी अभाव होता है, उनके कपड़ों में कभी मैल

नहीं बैठती है। स्वर्गवासियों की जो मालाएँ होती हैं, वे कभी कुम्हलाती नहीं हैं। उनसे निरंतर दिव्य सुगंध फैलती रहती है तथा वे देखने में भी बड़ी मनोरम होती हैं। ब्रह्मन्! स्वर्ग के सभी निवासी ऐसे ही विमानों से संपन्न होते हैं। महामुने! जो अपने सत्कर्मों द्वारा स्वर्गलोक पर विजय पा चुके हैं वे वहाँ बड़े सुख से जीवन बिताते हैं। उनमें किसी के प्रति ईर्ष्या नहीं होती वे कभी शोक तथा थकावट का अनुभव नहीं करते एवं मोह तथा मात्सर्य (द्वेषभाव) से सदा दूर रहते हैं।"

देवी भागवत महापुराण में है—

न चिंता न च मात्सर्यं कामक्रोधादिकं तथा।
सर्वे युवानः सस्त्रीकाः सहस्त्रादित्यवर्चसः॥
(12/12/50)

"वहाँ न शोक है, न ईर्ष्या, न कामक्रोधादि पाया जाता है। हज़ारों सूर्य के समान कान्तिमान वहाँ के पुरुष स्त्री सहित सदैव युवा रहते हैं।"

स्वर्ग के अधिकारी कौन होंगे?

स्वर्ग में कौन लोग जाएँगे और कौन लोग इससे वंचित रखे जाएँगे, इस सम्बन्ध में भी वेदों और अन्य भारतीय धर्मग्रंथों में इसका विस्तृत वर्णन हुआ है। उनमें से कुछ अवतरण यहाँ प्रस्तुत हैं—

नाकस्य पृष्ठे अधि तिष्ठतिश्रितो यः पृणाति स ह देवेषु गच्छति॥

(ऋ०, 1/125/5)

"अपने आश्रितों को जो धनधान्य से पूर्ण करता है, वह स्वर्ग में जाकर रहता है, वह देवों में जाकर विराजमान होता है।"

अजः पक्वः स्वर्गे लोके दधाति पञ्चौदनो निर्ऋतिं बाधमानः॥

(अथर्व०, 9/5/18)

"पंच भोजनवाला परिपक्व हुआ अजन्मा आत्मा दुरवस्था का नाश करता हुआ स्वर्गलोक में धारण करता है।"

जानीत स्मैनं परमे व्यो मन् देवाः सधस्था विद लोकमत्र।
अन्वागन्ता यजमानः स्वस्ती ष्टापूर्त स्म कृणुताविरस्मै॥

(अथर्व०, 6/123/2)

"हे साथ रहनेवाले देवो! इसको परम स्वर्गधाम में स्थित जानो और इसी में यह लोक है यह समझो। यज्ञकर्ता सुख से पीछे से आवेगा। इसके लिए इष्ट और पूर्ति प्रकटता से प्राप्त हो, ऐसा करो।"

अर्थात् सत्कर्म करनेवाला परमधाम में स्थित होता है, यह निश्चत बात है।

व्यास मुनि कहते हैं—

"परोपकार करनेवाला स्वर्ग में पुण्य पाता है और दूसरों को पीड़ा देनेवाला

पाप भोगने नरक में जाता है।''[1]

---

1. उपनिषद् में भी स्वर्ग के पात्र लोगों के गुणों का वर्णन किया गया है। उसमें बताया गया है कि उनके प्रमुख गुण ये हैं कि वे ब्रह्म को जानते हैं और पहचानते हैं। और ब्रह्म के बारे में यह भी जानते हैं कि ब्रह्म इहलोक में यथार्थ रूप में अपने समक्ष प्रकट नहीं होता और उसके दिव्य स्वरूप को इन चर्मचक्षुओं से नहीं देखा जा सकता। ऐसी दृढ़ आस्था रखते हैं। कठोपनिषद में है—

न संदृशे तिष्ठति रूपमस्य न चक्षुषा पश्यति कश्चनैनम्।
हृदा मनीषी मनसाऽभिक्लृप्तोय एतद्विदुर मृतास्ते भवन्ति॥
(कठो० 2/3/9)

''जो ब्रह्म को इस प्रकार जानते हैं कि ब्रह्म का यथार्थ रूप अपने समक्ष प्रकट नहीं होता। परमेश्वर के दिव्य स्वरूप को कोई इन चर्मचक्षुओं से नहीं देख सकता। मन को वश में करनेवाली विवेक बुद्धि तथा सद्भाव सम्पन्न हृदय द्वारा बारम्बार चिन्तन-मनन करने से ही उसका सम्यक् दर्शन हो सकता है। — वे अमृतत्व (अर्थात् स्वर्ग) को प्राप्त करते हैं।''

महाभारत में भी स्वर्ग के पात्र लोगों के गुणों का वर्णन मिलता है। शांतिपर्व में है—

दानेन तपसा चैव सत्येन च युधिष्ठिर।
ये धर्ममनुवर्तन्ते ते नराः स्वर्गगामिनः॥
(13/23/85)

''जो दान, तपस्या और सत्य के द्वारा धर्म का अनुष्ठान करते हैं वे मनुष्य स्वर्गगामी होते हैं।''

भयात्पापात्तथा बाधाद् दारिद्र्याद व्याधिधर्षणात्।
यत्कृते प्रतिमुच्यन्ते ते नराः स्वर्गगामिनः॥
(13/23/87)

''जिनके प्रयत्न से मनुष्य भय, पाप, बाधा, दरिद्रता तथा व्याधिजनित पीड़ा से छुटकारा पा जाते हैं, वे लोग स्वर्ग में जाते हैं।''

(शेष फुटनोट अगले पृष्ठ पर)

क्षमावन्तश्च धीराश्च धर्मकार्येषु चोत्थिताः।
मंगलाचारसम्पन्नाः पुरुषाः स्वर्गगामिनः॥
(13/23/88)

''जो क्षमावान, धीर, धर्मकार्य के लिए उद्यत रहनेवाले और मांगलिक आचार से संपन्न हैं वे पुरुष भी स्वर्गगामी होते हैं।''

मारतं पितरं चैव शुश्रूषन्ति जितेद्रियाः।
भ्रातृणां चैव सस्नेहास्ते नराः स्वर्गगामिनः॥
(13/23/93)

''जो जितेन्द्रिय होकर माता-पिता की सेवा करते हैं तथा भाइयों पर स्नेह रखते हैं, वे लोग स्वर्ग लोक में जाते हैं।''

—संपादक

नरक

पारलौकिक जीवन में नरक उन लोगों का ठिकाना है जो सत्य के विरोधी और चरित्रहीन होते हैं। भारतीय धर्मग्रंथों की दृष्टि से नरक अंधकारमय है। उसमें अधर्मी और पापी डाले जाएँगे। नरक यातना की दृष्टि से अनेक प्रकार के हैं, उनमें अधिकतर अंधकारमय हैं।

असूर्या नाम ते लोका अन्धेन तमसावृताः।
ताँस्ते प्रेत्यापि गच्छन्ति ये के चात्महनो जनाः॥

(यजु०, 40/3)

"जो गहन अंधकार से घिरे रहते हैं, वे लोग असुर्य कहलाते हैं। जो आत्मा का हनन करने वाले हैं, वे लोग प्रेत रूप में वैसे ही लोकों को प्राप्त होते हैं। (अर्थात् अंधकारमय नरक लोक को।)"

मनुस्मृति में है—

यो ह्यस्य धर्ममाचष्टे यश्चैवादिशति व्रतम्।
साऽसंवृतं नाम तमः सह तेनैव भंति॥

(मनु० 4/81)

"जो इस (शूद्र) को धर्मोपदेश और प्रायश्चित का उपदेश करे वह उस शूद्र के साथ 'असंवृताख्य' बड़े अंधकारवाले नरक में गिरता है।"

ईशावास्योपनिषद् में भी नरक को 'अँधेरा' ही कहा गया है और कहा गया है कि अविद्या की उपासना करनेवाले घोर अंधकारवाले लोकों में प्रवेश करते हैं।

पुराणों और विशेषकर विष्णुपुराण और श्रीमद्भागवत महापुराण में नरक का उल्लेख विस्तार से मिलता है। इनमें अनेकों भयंकर नरकों का होना बताया गया है।[1] शिवपुराण, योगसूत्र का व्यास–भाष्य और शंकराचार्य

1. दे० विष्णुपुराण 2/6/5, 2/6/26, श्रीमद्भागवत् महापुराण 5/26/3, 5/26/37.

—संपादक

का वेदांत-भाष्य (3/1/15) में नरकों की संख्या कम-से-कम सात बताई गई है। मनुस्मृति (4/87-90) एवं श्रीमद्भागवत महापुराण (5/26/7) में नरकों के नामों का उल्लेख करते हुए उनकी संख्या इक्कीस बताई गई है।[1] तदपि, भागवत महापुराण में मतांतर के और सात नरकों का उल्लेख आया है, जिससे इस पुराणानुसार नरकों की संख्या अट्ठाइस हो जाती है। श्रीमद् भागवत् महापुराण एवं विष्णुमहापुराण में यह भी बताया गया है कि मनुष्य किस बुरे कर्म के कारण किस नरक में डाला जाता है। भागवत महापुराण में है—

> जो पुरुष पराए धन, सन्तान अथवा स्त्रियों का अपहरण करता है, वह अतिशय भयानक यमदूतों के द्वारा काल पाश में बाँध कर जबरन तामिस्र नरक में ढकेला जाता है। उस अंधकारमय नरक में भोजन-पानी न मिलने, डंडे खाने तथा भय दिखलाए जाने आदि कई प्रकार की यातनाओं से पीड़ित वह जीव बहुत दुखी होकर एकाएक मूर्च्छित हो जाता है। इसी तरह जो पुरुष किसी दूसरे को धोखा देकर उसकी स्त्री आदि का भोग करता है, वह अन्धतामिस्र नरक में जा पड़ता है। जड़ से काटे हुए वृक्ष के समान वहाँ गिराए जाने पर यातना में पड़ा हुआ जीव वेदना के मारे अपनी सारी सुधिबुद्धि खो बैठता है और उसे कुछ भी नहीं सूझता। इसलिए उसे 'अन्धतामिस्र' नरक कहते हैं। जो लोग इस लोक में इस शरीर को ही 'मैं' और धन तथा स्त्री आदि को 'मेरा' ऐसी बुद्धि से प्राणियों के साथ द्रोह करता हुआ प्रतिदिन अपने कुटुम्ब के ही भरण-पोषण में फँसा रहता है, वह शरीर त्याग कर अपने पाप के कारण रौरव नरक में जा गिरता है। हे राजन! इस संसार में कुटुम्ब का पोषण करने के लिए उसने जिस जीव की जैसी हिंसा की होती है, परलोक में यमयातना को प्राप्त होने पर उसे वे ही जीव 'रुरु' होकर उसी तरह पीड़ित करते हैं। अतएव उसे 'रौरव' नरक कहते हैं। 'रुरु' नाम के जीव सर्प से भी अधिक क्रूर स्वभाव के होते हैं।

---

1. गरुड़ पुराण प्रेतकल्प 7/30-33 में भी इक्कीस नरकों के नाम आए हैं। इसमें इन नरकों को सबसे ऊँची श्रेणी के प्रबलतम नरक कहा गया है, अन्यथा नरकों की संख्या चौरासी लाख बताई गई है। —संपादक

इसी तरह महारौरव नरक है। उसमें वह पुरुष जाता है जो केवल अपना ही शरीर पालता है। वहाँ पड़े हुए जीव को आम मांसाहारी नाम के जीव मांस के लोभ से काटा करते हैं। जो महाक्रूर पुरुष इस लोक में जीवित पशु तथा पक्षियों को रौंदता है, राक्षसों से भी निन्दित उस निर्दयी प्राणी को परलोक में यमराज के सेवक कुम्भीपाक नरक में ले जाकर खौलते हुए तेल में भूनते हैं। जो प्राणी इस लोक में पिता, ब्राह्मण अथवा वेद से द्रोह करता है, उसे यमदूत काल सूत्र नाम के नरक में पहुँचाते हैं, जिसका घेरा दस हजार योजन का है, जो तांबे का बना हुआ है, जिसमें तपता मैदान है और जो ऊपर सूर्य तथा नीचे अग्नि की दाह से अत्यन्त सन्तप्त रहता है। जीव भूख-प्यास के मारे व्याकुल हो जाता और उसका शरीर बाहर-भीतर से जलने लगता है। इस तरह पशु के शरीर में जितने रोएँ होते हैं, उतने ही हज़ार वर्षों तक वह उस नरक में कभी बैठता, कभी लेटता, कभी उठने की चेष्टा करता, कभी खड़ा होता और कभी इधर-उधर दौड़ने लगता है। ......जो पुरुष राजा या राजा का कर्मचारी होकर किसी दण्ड के अयोग्य पुरुष को दण्ड देता है, वह पापी मर कर सूकर मुख नामक नरक में जा पड़ता है। वहाँ महाबली यमदूतों के द्वारा अपने अंगों के कुचले जाने के कारण वह कोल्हू में पेरे जाते हुए तिलों के समान हो दुखी स्वर से चिल्लाता रहता है और अत्यन्त पीड़ित होकर इस तरह बेहोश हो जाता है, जैसे इस लोक में राजा के द्वारा जेल में बन्द किए निरपराध प्राणी कष्ट से मूर्च्छित हो जाते हैं। ....

इस लोक में जो मनुष्य जो कुछ मिले उसे बालक, वृद्ध तथा अतिथि आदि को बिना दिए स्वयं ही खा लेता है, उसे कौए के समान कहा गया है। वह परलोक में महा अधम कृमि भोज नाम के नरक में जा पड़ता है। वहाँ वह एक लाख योजन विस्तार वाले कीड़ों के कुण्ड में जाकर कीड़ा बनता और जब तक वह बिना बाँटे तथा हवन किए भोजन करनेवाला प्राणी पूरा प्रायश्चित नहीं कर लेता, तब तक उन कीड़ों से भक्षित होता हुआ और स्वयं भी उन्हीं को खाता हुआ अपने शरीर को पीड़ित करता है। हे राजन! जो प्राणी इस लोक में किसी प्रकार की आपत्ति न आने पर भी चोरी तथा ज़बर्दस्ती किसी पुरुष के सुवर्ण तथा रत्न आदि का हरण करता है, उसे

परलोक में यमदूत लोहे के तपाए हुए गोलों से दाग़ते और सँड़सी से उसकी खाल नोचते हैं। इस लोक का यदि कोई पुरुष अगम्या (महरम, वह जिससे विवाह अवैध हो) स्त्री के साथ सम्भोग करता है तो यमदूत उसे कोड़े से पीटते तथा तपाए हुए लोहे की स्त्री-प्रतिमा से और यदि कोई स्त्री अगम्य पुरुष के साथ व्यभिचार करती है तो उस स्त्री को तपाई हुई पुरुष-प्रतिमा से आलिंगन कराते हैं। जो प्राणी इस लोक में पशु आदि के साथ व्यभिचार करता है तो उसे परलोक में नरक प्राप्त होने पर यम के दूत वज्र के समान कठोर काँटों से पूर्ण सेमर के वृक्ष पर चढ़ा कर नीचे की ओर खींचते हैं। जो राजा अथवा राजपुरुष इस लोक के श्रेष्ठ कुल में जन्म लेकर भी धर्म मर्यादा का उल्लँघन करते हैं, वे मरने के बाद मर्यादाहीन होकर वैतरणी नदी में जा गिरते हैं, जो नरक की खाई के समान है। वहाँ उन्हें इधर-उधर से वहाँ के जलचर नोचते हैं तो भी उनके शरीर का अन्त नहीं होता और वे अपने पापों के कारण विष्ठा, मूत्र, पीब, केश, नख, अस्थि, मेद, मांस तथा वसा आदि से पूर्ण उस घृणित नदी में प्राणों सहित बहते हुए उसे अपने कर्मों का फल समझ कर अत्यन्त सन्तप्त होते हैं।

जो लोग शौंच तथा आचार के नियमों से भ्रष्ट हो तथा लज्जा त्याग कर इस लोक में पशु की भांति आचरण करते हैं, वे भी मरने के बाद, पीव, विष्ठा, मूत्र, कफ़ तथा मल से भरे समुद्र में गिर कर उन अतिशय घृणित वस्तुओं का ही भक्षण करते हैं। जो ब्राह्मण आदि उच्च वर्ण के लोग इस लोक में कुत्ते तथा गधे आदि निन्द जीवों को पालते और मृगया आदि में लगे रहते तथा यज्ञ आदि विहित कर्मों के अतिरिक्त अन्यत्र भी पशुओं का वध करते हैं, उन्हें मरने के बाद यम के दूत लक्ष्य बना कर बाणों से छेदते हैं। जो पाखण्डी पाखण्ड पूर्ण यज्ञों में पशु मारते हैं, उन्हें परलोक में वैशस नरक में डाल कर वहाँ के अधिकारी उनको बहुत पीड़ा देते हुए काटते हैं। जो पुरुष कामातुर हो अपने ही वर्ण की स्त्री को वीर्यपान कराता है तो उस पापी को यम के दूत परलोक में रेतः कुल्या नामक नरक में डाल कर उसे भी वीर्य ही पिलाते हैं। जो चोर राजा तथा राजपुरुष इस लोक में किसी के घर में आग लगा देते, किसी को ज़हर खिला देते अथवा गाँवों या व्यापारियों के गिरोह को लूट लेते हैं तो उनको भी मारने के बाद वज्र के समान

दाढ़ोंवाले सात सौ बीस कुत्ते के स्वरूपवाले यमदूत बड़े क्रूर होकर नोचने लगते हैं। जो प्राणी किसी की गवाही देने में, धन के लेन-देन अथवा दान देने के समय किसी तरह झूठ बोलता है तो वह मरने के बाद आधार शून्य अवीचिमत नरक में पहुँचाया जाकर सौ योजन ऊँचे पर्वत के शिखर से नीचे को सिर करके ढेकल दिया जाता है। जहाँ स्थल की पथरीली ज़मीन ही जल की तरह दीखती है, वह अवीचिमत नरक कहलाता है। वहाँ गिराए जाने के बाद शरीर के टुकड़े-टुकडे होकर भी वह नहीं मरता और उसे बार-बार ऊपर ले जाकर नीचे गिराया जाता है। जो सोम पीनेवाला ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य अथवा उनकी स्त्री यज्ञ व्रत ग्रहण करके भी प्रमादवश मदिरा पीती हैं, उनको यम के दूत नरक में ले जाते और उनकी छाती पर पाँव रखकर उनके मुँह में आग से तपाकर लाल किया हुआ गरम लोहा डालते हैं। जो प्राणी इस लोक में निम्न श्रेणी का होकर भी अपने को बड़ा मानता और जन्म, तप, विद्या, आचार, वर्ण या आश्रम में अपने से बड़ों का सत्कार नहीं करता, वह जीता हुआ भी मुर्दे के समान रहता है। वह प्राणी मरने के बाद क्षारकर्दम नाम के नरक में नीचे को मुख करके गिरा दिया जाता है और वहाँ उसे अगणित पीड़ाएँ भोगनी पड़ती हैं।

हे राजन! जो इस लोक में सर्पों के समान उग्र स्वभाववाले पुरुष प्राणियों को दुख देते हैं, वे खुद भी मरने के बाद दन्दशूक नरक में जा गिरते हैं, जहाँ पाँच-पाँच तथा सात-सात मुख के सर्प उनके समीप आकर उन्हें चूहों की तरह निगल जाते है। जो व्यक्ति यहाँ अन्य प्राणियों को अँधेरे गढ़ों, कोठों अथवा कारागृहों में मूँद देते हैं, उन्हें यमदूत मरने के बाद वैसे ही स्थानों में मूँद कर विषैली अग्नि से निकलते धुएँ में घोटते हैं। जो गृहस्थ पुरुष इस लोक में अतिथि तथा अभ्यागतों की ओर बार-बार क्रोध में भर कर मानों भस्म करना चाहता हो, ऐसी कुटिल दृष्टि से देखता है तो नरक में जाने के बाद उस पाप दृष्टि के नेत्रों को गृध्र, कंक, काक तथा वट आदि वज्र के समान तीखी चोंचों के पक्षी बरबस आँखें निकाल लेते हैं। इस लोक में जो पुरुष अपने को धनवान मान कर अभिमान के साथ सबको टेढ़ी नज़र से देखता है, जिसका सब लोगों पर सन्देह बना रहता है जिसका धन के व्यय और नाश की चिन्ता से हृदय तथा मुख सूखा रहता है, अतएव

कुछ भी सुख न मान कर जो यक्ष की भाँति धन की रक्षा में ही लीन रहता है, वह भी मरने के बाद उसके अर्जन, वर्धन तथा संरक्षण की चिन्ता से ग्रस्त होता हुआ सूचीमुख नरक में जा गिरता है, वहाँ उस धन लोलुप पापी पुरुष के सब अंगों को यमराज के दूत दर्ज़ियों के सदृश सूई और धागे से सीते हैं। (5/26/8-36)

गरुड़ पुराण (प्रे०क० 7/30), में धर्मराज को चौरासी लाख नरकों का अधिपति कहा गया है। हिन्दू धर्म में चौरासी लाख 'योनि' अर्थात् देहधारी माने जाते हैं, जिनमें आवागमन के कारण आत्मा चक्कर काटती रहती है। लेकिन गरुड़ पुराण में इससे अभिप्रेत चौरासी लाख नरक उल्लिखित है। गरुड़ पुराण में एक दूसरे स्थान पर भी चौरासी लाख नरक का उल्लेख किया गया है और कहा गया है कि उनमें से इक्कीस बड़े भयानक हैं।

वेदों में भी नरक का स्पष्ट विवरण मिलता है।

ऋग्वेद में है—

पापासः सन्तो अनृता असत्या इदं पदमजनता गभीरम्।

(ऋ०, 4/5/5)

"दुराचारी, पापी, मानस तथा वाचिक-सत्य-रहित लोग नरक को प्राप्त होते हैं।"

अथर्ववेद में है—

अथहुर्नारकं लोकं निरुन्धानस्य याचिताम्

(12/4/36)

अर्थात् "याचना करने पर न देनेवालों को नरक लोक है।"

नरक में कौन जाएगा?

नरक या जहन्नम उन लोगों के लिए है जो चरित्रहीन और बुरे हों। वे स्वर्ग के अधिकारी नहीं हो सकते, उनका ठिकाना नरक है। वेद में है—

वरणेन प्रव्यथिता भ्रातृव्या मे सबन्धवः।
असूर्त रजो अप्यगुस्ते यन्त्वधमं तमः॥

(अथर्व० 10/3/9)

"मेरे बान्धवों के साथ शत्रुगण वरण मणि के कारण पीड़ित होकर अन्धकारमय धूलिनय स्थान को प्राप्त हों। ये निकृष्ट अन्धकार को प्राप्त हों।"

सर्वान् कामान् यमराज्ये वशा प्रददुषे दुहे।
अथाहुर्नारकं लोकं निरुन्धानस्य याचिताम्॥

(अथर्व० 12/4/36)

"वशा (कामना योग्य वेदवाणी) न्यायकारी (परमेश्वर) के राज्य में अपने बड़े दानी के लिए सब श्रेष्ठ कामनाएँ पूरी करती है और उस माँगी हुई को रोकनेवाले का लोक (घर) नरक, वे बताते हैं।"

इन्द्रासोमा दुष्कृतो वव्रे अन्तरनारम्भणे तमसि प्र विध्यतम्।
यथा नातः पुनरेकश्चनोदयत् तद् वामस्तु सहसे मन्युमच्छवः॥

(ऋ० 7/104/3)

"इन्द्र और सोम! दुष्टकर्म करनेवालों को अगाध अंधकार में विद्ध करो, जिससे एक भी फिर से वहाँ से न आ सके। वह तुम दोनों का उत्साहपूर्ण बल शत्रुविजय के लिए समर्थ हो।"

अर्थात् दुष्टकर्म करनेवाले मनुष्य अबाध अंधकार में ही सदा रहते हैं, उस अंधकार से वे कभी बाहर नहीं निकल सकते।

देवी भागवत में भी नरकगामी लोगों के लक्षणों एवं उनके बुरे कर्म एवं उनके दुष्फलों का विस्तृत वर्णन मिलता है। आठवें स्कंध में है—

"यः पतिं वंचयित्वा तु दारा दीनुपभुज्यति।
अंधतामिस्त्रनरके पात्यते यमकिंकरैः॥
(दे० भा०, 8/22/5-6)

"जो कोई अपने स्वामी की वंचना करके उसकी दारा (पत्नी) को भोग करता है। यमकिंकर उसको अंधमातिस्त्र नरक में डाल देते हैं, जहाँ पड़कर उसको महादुख होता है।"

एतन्ममाहमिति यो भूतद्रोहेण केवलम्।
पुष्णाति प्रत्यहं स्वीयकुटुंबं कार्यलंपटः॥
एतद्विहाय चात्रैव स्वाशुभेन पतेदिह।
रौरवे नाम नरके सर्वसत्वभयावहे॥
(दे० भा०, 8/22/8-10)

"जो प्राणी अहंकार के वश हो निरंतर भूतों (मनुष्यों) से द्रोह करते हैं और कार्य में लंपट हो अपने कुटुंब को ही पुष्ट (पालन-पोषण)करते हैं, वे यह सब यहीं छोड़कर अपने कर्म के कारण सब भयावह रौरव नरक में पड़ते हैं।"

ये नरा सर्वदा साक्ष्येप अनृतं भाषयंति च।
दाने विनिमयेऽर्थस्य देवर्षेपाप बुद्धय॥
ते प्रेत्यामुत्र नरके अवीच्याख्येऽतिदारुणे।
योजनानां शतोच्छ्रायाद्गिरि मूर्ध्न पतंति हि॥
अनाकशेऽधःशिरस स्तदवीचीतिनामके।
यत्र स्थलं दृश्यते च जलवद्वीचि संयुतम्॥
(दे० भा०, 8/23/1-3)

"जो मनुष्य साक्षी (गवाही) में सदैव असत्य (झूठ) बोलते हैं तथा अर्थ (धन) के लेने-देने में असत्य भाषण करते (अर्थात् झूठ बोलते) हैं। वे मरकर अवीचि नरक में पड़ते हैं और सौ योजन ऊंचे पहाड़ से नीचे गिराए जाते हैं। अनाकाश में नीचा सिर करके इस नरक में गिराए जाते हैं, जहाँ स्थल भाग जल के समान तरंगवाला दीखता है।"

बौद्धमत और परलोक की धारणा

जैन और बौद्ध धर्म में भी स्वर्ग और नरक की धारणा मिलती है। इस से सम्बन्धित कुछ उदाहरण यहाँ प्रस्तुत किए जाते हैं—

''यह विचार कि दान कुछ नहीं है, सुकर्म कुछ नहीं, कुकर्म कुछ नहीं, न लोक कुछ है न परलोक कुछ है। घर के ज़िम्मेदारो! ये हैं अधार्मिक क्रिया-कलाप। इस तरह के व्यवहार करनेवाले लोग शरीर त्यागने के बाद नरक में जाते हैं।'' (म० नि०, 1/5/1)

धम्मं चरे सुचरिचतं न तं दुच्चरितं चरे।
धम्मचारी सुखं सेति अस्मिं लोके परम्हि च॥

(धम्मपद 13/3)

''धर्म का सदाचरण करे, दुराचरण न करे। धर्माचरण करने वाला इस लोक और परलोक दोनों जगह सुखपूर्वक रहता है।''

अन्धभूतो अयं लोको तनुकेत्थ विपस्सति।
सकुन्तो जालमुत्तो व अप्पो सग्गाय गच्छति॥

(धम्मपद 13/8)

''यह संसार अंधे की तरह है, इसे दिखाई कम पड़ती है, ऐसे लोग अत्यंत अल्प हैं जो जाल के बंधन से मुक्त पक्षी की तरह स्वर्ग को जाते हैं।''

एकं धम्मं अतीतस्स मुसावादिस्स जन्तुनो।
वितिण्णपरलोकस्स नत्थि पापं अकारियं॥

(धम्मपद 13/10)

''एक धर्म (सत्य) का अतिक्रमण कर जो झूठ बोलता है, उस परलोक के चिंतन से रहित पुरुष के लिए कोई पाप ऐसा नहीं रह जाता जो वह न कर सके।''

चत्तारि ठानानि नरो पमत्तो आपज्जती परदारूपसेवी।
अपुञ्ञलाभं न निकामसेय्यं निन्दं ततीयं निरयं चतुत्थं॥

(धम्मपद 22/4)

''प्रमादी परस्त्रीगामी मनुष्य की चार गतियाँ हैं— अपुण्य का लाभ, सुख से न निद्रा, तीसरे निन्दा और चौथे नरक।''

अर्थात् जो बहका हुआ व्यक्ति दूसरों की औरत को हाथ लगाता है, वह चार बुरे परिणामों से दो–चार होता है; (1) उसे पाप मिलता है, (2) सुख से सो नहीं सकता, (3) संसार में उसे अपमानित किया जाता है, और (4) उसे नरक में जाना पड़ता है।

ख़ुदावन्द पयम्बर (3/3) में है—

"उसे (अर्थात् पापी को) प्रचण्डाग्नि के अंगारों के बड़े पहाड़ पर चढ़ाते–उतारते हैं.... उसे ऊपर पैर नीचे सिर पकड़कर बहुत तेज़ शोला फेंकनेवाली जलती–दहकती गरम लोहे की कुंभी (देग) में डालते हैं, जहाँ वह झाग फेंकता हुआ पकता है। वह झाग फेंकता एक बार ऊपर आता है और एक बार नीचे जाता, एक बार तिरछे जाता है।"

"तब भिक्षुओ! उसे नरक के सिपाही निकालकर ज़मीन पर रखकर कहते हैं कि ऐ मनुष्य! तू क्या चाहता है? वह कहता है कि मैं भूखा हूँ। तब ऐ भिक्षुओ! नरक के सिपाही जलते हुए तपते लोहे की छड़ से मुँह फाड़कर जलते हुए लाल तपते हुए लोहे की छड़ मुँह में डाल देते हैं जो उसके होंठ, हलक़, सीने और पेट को जलाता है और अंतड़ियों को लेता हुआ नीचे हिस्से से बाहर निकल जाता है..... नरक के सिपाही कहते हैं कि हे मनुष्य! तू क्या चाहता है? वह कहता है मैं प्यासा हूँ। तब उसको हे भिक्षुओ! नरक के सिपाही जलते–तपते हुए लोहे की छड़ से मुँह को फाड़कर जलते–तपते ताँबे को पिलाते हैं। वह अंतड़ी को लेता हुआ नीचे के हिस्से से निकल जाता है।"

मज्झिम निकाय 3/3 में है—

"जुआरी पहले ही दाँव में बड़ी दौलत पाए, तो हे भिक्षुओ! यह दाँव मात्रा में कम है। उससे कहे कि बड़ा दाँव यह है कि 'विद्वान' शरीर और प्राण और ज़बान से सुकर्म करके शरीर त्यागने के बाद सुकर्म से प्राप्त स्वर्ग के संसार में जन्म लेता है।"

बौद्ध–धर्म में स्वर्ग के सम्बन्ध में जो विवरण मिलते हैं, उनसे मालूम होता है कि स्वर्ग में स्वास्थ्य, सुन्दरता और जवानी, ख़ूबसूरत औरत इत्यादि सभी ऐश व आराम की चीज़ें उपलब्ध होंगी और नरक में पापियों को हर प्रकार की यातना दी जाएँगी।

उपसंहार

परलोक की अवधारणा के सम्बन्ध में जो जायज़ा लिया गया, वह यह अनुमान लगाने के लिए पर्याप्त है कि मृत्यु के बाद जीवन के सम्बन्ध में भारत का वास्तविक दृष्टिकोण क्या है? वस्तुतः भारत का वास्तविक दृष्टिकोण परलोकवाद है। इससे इस बात का विश्वास बढ़ जाता है कि क़ुरआन का यह कहना कि सत्यनिष्ठ लोगों की ओर से हमेशा परलोक प्राप्त करने का ही आह्वान किया गया है, शत-प्रतिशत सही है। क़ुरआन के अनुसार वर्तमान विश्व नष्ट हो जानेवाला है। लेकिन आगामी संसार सदा शेष रहेगा। उस लोक में लोग दो समुदाय में बंट जाएँगे—

> "एक गिरोह स्वर्ग में प्रवेश करेगा और दूसरा आग के शोलों के हवाले होगा।" (क़ुरआन, 42/7)

अब यह फ़ैसला आदमी को स्वयं करना है कि वह किस समुदाय में शामिल होना पसंद करता है।

संदर्भ-पुस्तक-सूची

1. श्री मद्भगवद्गीता— प्रकाशक : गोविन्द भवन, कार्यालय : गीताप्रेस, गोरखपुर, संस्करण : 79वाँ, सं० 2058

2. ऋग्वेद— अनुवादक : डॉ० गंगा सहाय शर्मा, प्रकाशक : संस्कृत साहित्य प्रकाशन, नई दिल्ली-110001, संस्करण 9वाँ, सन् 2003,

3. ऋग्वेद का सुबोध भाष्य— लेखक : पद्मभूषण ब्रह्म ऋषि पं० श्रीपाद दामोदर, सातवलेकर, प्रकाशक : वसन्त श्रीपाद सातवलेकर, स्वाध्याय मण्डल (वैदिक अनुसंधान केन्द्र) पारडी, ज़िला— वलसाड (गुजरात), संस्करण- 1993

4. अथर्ववेद का सुबोध भाष्य— लेखक एवं प्रकाशक : उपर्युक्त, संस्करण - 1990,

5. अथर्ववेद— अनुवादक : डा० गंगा सहाय शर्मा, प्रकाशक संस्कृत साहित्य प्रकाशन, नई दिल्ली-1, संस्करण : 2004 ई०

6. यजुर्वेद का सुबोध भाष्य— भाष्यकार : पद्मभूषण ब्रह्म ऋषि पं० श्रीपाद दामोदर सातवलेकर, प्रकाशक : वसन्त श्रीपाद सातवलेकर, स्वाध्याय मण्डल, पारडी, जिला— वलसाड, संस्करण 1999,

7. 108 उपनिषद् (सरल हिन्दी भावार्थ सहित)— लेखक एवं संपादक— वेदमूर्ति तपोनिष्ठ पं० श्रीराम शर्मा आचार्य, प्रकाशक— ब्रह्मवर्चस्, शान्तिकुन्ज, हरिद्वार, (उ०प्र०), संस्करण— द्वितीय, 2000,

8. निरुक्तम्— संपादक एवं अनुवाद— डॉ० उमाशंकर शर्मा ''ऋषि'', प्रकाशक— चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी-221001, संस्करण— 2001,

9. निरुक्तम् (चतुर्दशाध्यायात्मक सटीक, मूल- निघण्टु-सहितम्)— हिन्दी व्याख्या : श्री भागीरथ शास्त्री, प्रकाशक : मेहरचन्द्र लछमनदास पब्लिकेशन्स, अंसारी रोड दरियागंज, नई दिल्ली-110002, संस्करण : चतुर्थ, सन् 1999 ई०

10. मनुस्मृति (भाषानुवाद)— भाष्यकार एवं संपादन : स्व० श्री पं० तुलसीराम स्वामी, प्रकाशक : सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा, नई दिल्ली-2, संस्करण— जनवरी 2003,

11. श्रीमद्भागवत भाषा टीका— टीकाकार— श्री दौलत राम गौड़ वेदाचार्य, प्रकाशक— श्री ठाकुर प्रसाद पुस्तक भण्डार, कचौड़ी गली, वाराणसी-1,

12. अथ देवी भागवत सभाषाटीका समाहात्म्यम्— मुद्रक एवं प्रकाशक— खेमराज श्री कृष्णदास, अध्यक्ष : श्री वेंकटेश्वर प्रेस, खेमराज श्री कृष्णदास मार्ग, मुम्बई-4, संस्करण— सन् 2002 (सजिल्द),

13. वेदव्यास कृत श्री मद्भागवत महापुराणम्— प्रकाशक : संस्कृत साहित्य प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण— 2002,

14. अथर्ववेद [(भाषा भाष्य) काण्ड-8 से 20 तक]— प्रकाशक : सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा, महर्षि दयानन्द भवन, नई दिल्ली-2, भाष्यकार : श्री पं० क्षेमकरणदास त्रिवेदी, संस्करण— अक्टूबर 2000 ई०

15. अथर्ववेद (भाग-2)— ले०— पं० श्रीपाद दामोदर सातवलेकर प्रकाशक : स्वाध्याय मण्डल (वैदिक अनुसंधान केन्द्र) किल्ला-पारडी-396125, जिला वलसाड, संस्करण— 14 जनवरी, सन् 2000 ई०

16. अथर्ववेद संहिता— प्रकाशक : नाग प्रकाशक, जवाहर नगर, दिल्ली-7, संस्करण— सन् 1994 ई०

17. ऋग्वेद का सुबोध-भाष्य (भाग-3)— लेखक : पद्मभूषण ब्रह्मर्षि पं० श्रीपाद दामोदर सातवलेकर, प्रकाशक : स्वाध्याय मण्डल, किल्ला-पारडी, संस्करण— सन् 2000 ई०,

18. गरुड़ पुराण (द्वितीय खण्ड)— संपादक : पं० श्रीराम शर्मा आचार्य, प्रकाशक : डॉ० चमन लाल शर्मा, संस्कृत संस्थान, ख़्वाजा कुतुब (वेद नगर), बरेली 243003, (उ०प्र०), संस्करण— सन् 1997 ई०

19. शतपथ- ब्राह्मणम् (प्रथम भाग)— हिन्दी टीका : पण्डित गंगा प्रसाद उपाध्याय, प्रकाशक : सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा, नई दिल्ली-2, संस्करण— सन् 1998 ई०

20. मनुस्मृति (सरल हिन्दी अनुवाद सहित)— अनुवादक : पं० ज्वाला प्रसाद चतुर्वेदी, प्रकाशक : रणधीर प्रकाशन, रेलवे रोड, हरिद्वार-249401, संस्करण-6वाँ, सन् 2002 ई०

21. यजुर्वेद संहिता— प्रकाशक- नाग प्रकाशक, जवाहर नगर, दिल्ली-7, संस्करण— 1994 ई०

22. यजुर्वेद— अनुवादिका : डॉ० रेखा व्यास, प्रकाशक : संस्कृत साहित्य

प्रकाशन, नई दिल्ली-1, संस्करण— सन् 2004 ई०

23. **यजुर्वेद**— (सरल हिन्दी भावार्थ सहित) संपादक एवं अनुवादक : पं० श्रीराम शर्मा आचार्य, प्रकाशक : डॉ० चमन लाल गौतम, संस्कृत संस्थान, ख्वाजा कुतुब रोड (वेद नगर), बरेली, (उ० प्र०) संस्करण— सन् 2001 ई०

24. **महाभारत (खण्ड-2, 5, 6)**— अनुवादक : साहित्याचार्य पं० रामनारायणदत्त शास्त्री पाण्डेय 'राम', संस्करण— 9वाँ, संवत्० 2058, प्रकाशक : गीता प्रेस, गोरखपुर-5

25. **महाभारत (खण्ड-1)**— अनुवादक एवं प्रकाशक : साहित्याचार्य पं० रामनारायणदत्त शास्त्री पाण्डेय 'राम', संस्करण— 11वाँ, संवत्० 2058,

26. **शतपथ ब्राह्मण (भाग-3)**— अनुवादक : पं० गंगा प्रसाद उपाध्याय, प्रकाशक : विजय कुमार गोविन्द राम हासानन्द, 4408, नई सड़क, दिल्ली-6, संस्करण— 2003 ई०

27. **धम्मपद**— सम्पादक एवं अनुवादक : अवध किशोर नारायण, प्रकाशक : भिक्षु संघरत्न मंत्री, महाबोधि सभा, ऋषिपत्तन, सारनाथ (बनारस), संस्करण— विक्रमान्द 1995,

28. **शब्दों का जीवन,**

29. **भारतीय संस्कृति**

30. **पद्मचंद्र कोश**

31. **आवागमन**— लेखक : सिद्धार्थ विद्यालंकार

32. **पुनर्जन्म और वेद**— लेखक : डॉ० पराडा चौहान